श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष–८ सितम्बर–१९८९ अंक–९

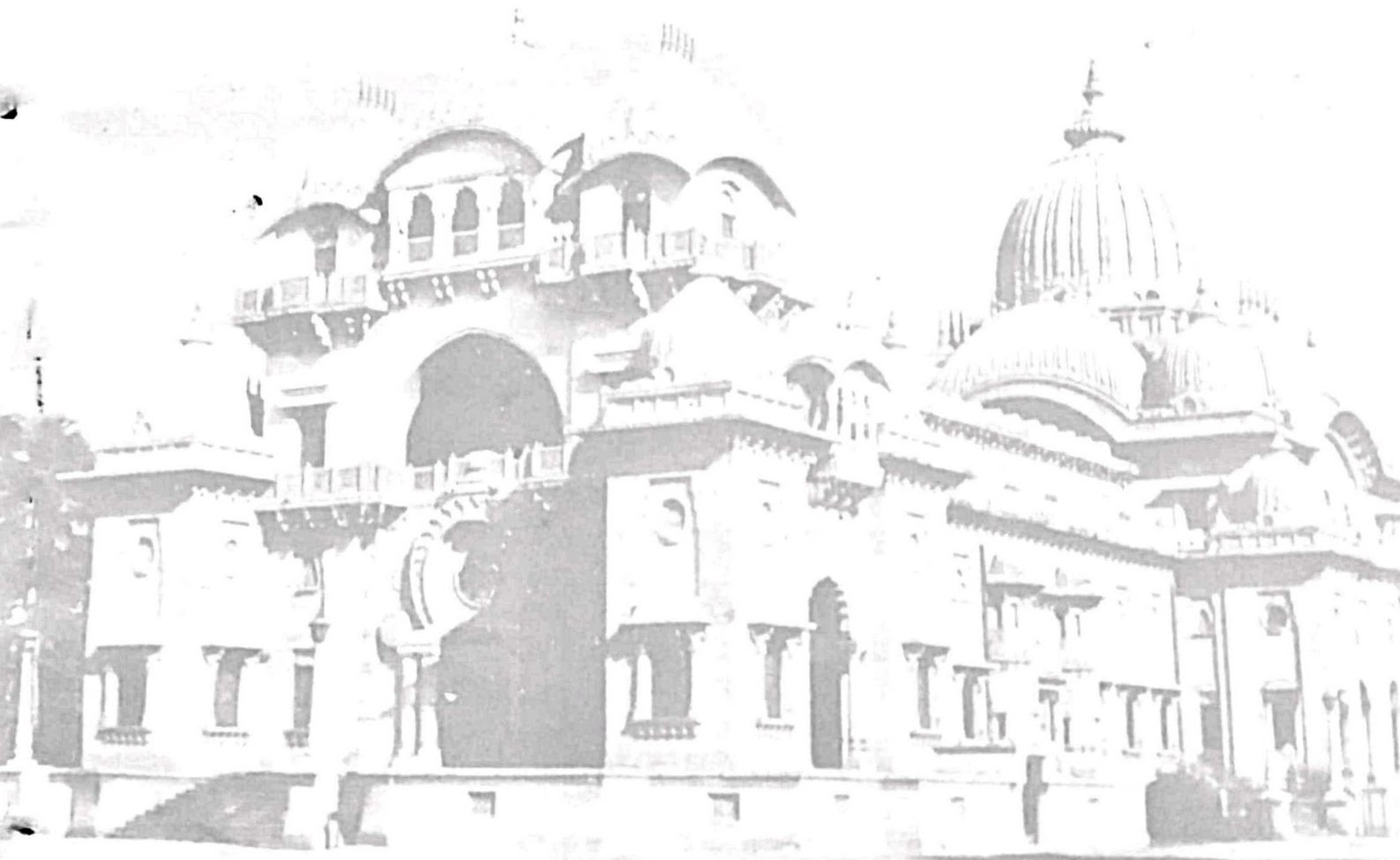

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता – रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी –४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय —४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप –नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमरावती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया – कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नागोरी कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा – समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल –खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डाबरीवाला कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री वृजेश चन्द्र बाजपेयी - जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन – कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ –हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका –डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम— मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम —इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा –इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द—रामकृष्ण मठ,इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे - दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय— छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कुमार प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, डुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन मेठी कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अपरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. दो कविताएँ	(सारदा तनय, बसु मालवीय)	२
३. भगवान श्रीकृष्ण –व्यक्तित्व तथा उपदेश	आनन्द	३
४, धर्म और विज्ञान	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१४
५. स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में	ब्रह्मबान्धव उपाध्याय	२१
६. भारतीय अध्यात्म के सूर्य : स्वामी विवेकानन्द	सुश्री किरण	२२
७. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२५
८. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२८
९. योगक्षेमं वहाम्यहम्	स्वामी शिवसेवानन्द	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ८ सितम्बर—१९८९ अंक — ९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

यदि ईश्वरतत्व को खोजना हो तो मनुष्य में खोजो। मनुष्य के ही भीतर वे सबसे अधिक प्रकाशित होते हैं। जिस मनुष्य के भीतर देखो कि प्रेम-भक्ति उमड़ रही है, जो ईश्वर के प्रेम में मतवाला हो गया है, उनके लिए पागल हो गया है, उस मनुष्य में निश्चित ही ईश्वर अवतीर्ण हुए हैं।

(२)

दो प्रकार के लोग आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं—एक तो वे जो विद्या के बोझ से नहीं लदे हैं, जिनका मन दूसरों से उधार लिए हुए विचारों से नहीं भरा है, दूसरे वे जिन्होंने सारा शास्त्र, विज्ञान आदि पढ़ने के बाद यही जाना है कि 'हम कुछ भी नहीं जानते'।

(३)

अगर तुम्हें अहंकार ही करना है तो 'मैं ईश्वर का दास हूँ, मैं ईश्वर की सन्तान हूँ' इस तरह का अहंकार करो। महापुरुषों का स्वभाव बालकों जैसा होता है। ईश्वर के समीप वे सदा ही बालक हैं, इसलिए उनमें अहंकार नहीं रहता। उनकी सारी शक्ति ईश्वर की शक्ति है, पिता की शक्ति है, स्वयं की कुछ भी नहीं।

(४)

इस कलियुग में कोई यदि ईश्वर के लिए तीन दिन भी व्याकुल होकर रोए तो ईश्वर की कृपा से वह सिद्ध हो सकता है।

लो हमारा नमन !

(हिंडोल-रूपक)

—सारदा तनय

यतिवर लो हमारा नमन।
मोह-माया-तिमिर हरने आज तव आगमन ॥
नाथ करुणा से तुम्हारी सहज हो रिपुदमन।
स्वार्थ भागे, ज्ञान जागे, शुद्ध बन जाय मन ॥
दो विवेक-विराग-श्रद्धा-त्याग-तप-संयमन।
प्रबल देहासक्ति हर लो, हो भवतृषाशमन ॥
तमो-जड़ता-भय-निबलता पर करो आक्रमण।
दिव्यता अभिव्यक्त कर दो, न हो पुनरागमन ॥

वन्दना कर लें चलो उनकी

—बसु मालवीय, इलाहाबाद

अगरु चन्दन धूप जिनका स्मरण, वन्दना कर लें चलो उनको
जी गये उपदेश जिनके आचरण, वन्दना कर लें चलो उनकी।
जाति के या धर्म के पाखण्ड सारे
रूढ़ियों के बन्ध जो खोलें हमारे
और दें हमको नया इक जागरण, वन्दना कर लें चलो उनकी।
एक भी कुत्ता अगर भूखा कहीं
मोक्ष की बातें उचित होंगी नहीं
कह सके जो खोलकर अन्तःकरण, वन्दना कर लें चलो उनकी।
हो समन्वय धर्म से विज्ञान का
तम छंटे इस विश्व के अज्ञान का
विश्व मैत्री का बने वातावरण, वन्दना कर लें चलो उनकी।
ये सभी संदेश जीवन छन्द
दे गये स्वामी विवेकानन्द
तीर्थ है, गुजरे जहाँ उनके चरण, वन्दना कर लें चलो उनकी।

भगवान श्रीकृष्ण व्यक्तित्व तथा उपदेश

—'आनन्द'
नागपुर

सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
नमो वेदांतवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥
नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यंतहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविंदाय नमो नमः ॥
निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥

महामानवों के जीवनचरित्र का अध्ययन-अनुशीलन करते समय अधिकांश लोग उनकी बाह्य अभिव्यक्ति को ही ग्रहण करते हैं—उनके महान् क्रियाकलाप, उनके जीवन की बड़ी-बड़ी आश्चर्यकारक घटनाएँ आदि को ही स्वीकार करते हैं, उनके अंतर्निहित व्यक्तित्व की ओर विशेष ध्यान नहीं देते—उनके अंतर्गत स्वरूप का विचार नहीं करते। इसका कारण है—किसी किसी महापुरुष के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति इतनी उज्ज्वल, भव्य होती है कि उसकी तुलना में उनका व्यक्तित्व बहुत छोटा प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति के बाह्य प्रकाश की चकाचौंध में उनका आंतर व्यक्तित्व मानो दृष्टि से ओझल हो जाता है—ढँक-सा जाता है। किन्तु समय समय पर इस धराधाम में ऐसे महामानव अवतीर्ण होते हैं जिनके बारे में हम कह सकते हैं—जैसा व्यक्तित्व वैसी ही अभिव्यक्ति। भगवान् श्रीकृष्ण ऐसी ही महान् विभूति हैं। उनका व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति दोनों लोकोत्तर हैं—दिव्य हैं। हम दोनों को ग्रहण करने का प्रयत्न करेंगे।

व्यक्तित्व

भगवान श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को समझने के लिए उनकी जीवनलीला का अवलोकन करना पड़ता है। इसके लिए तीन प्रमुख प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है—महाभारत, हरिवंश और श्रीमद्भागवत। फिर ब्रह्मपुराण पद्मपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, स्कंदपुराण, वामनपुराण एवं कूर्मपुराण भी हैं। इन ग्रन्थों में निबद्ध विविध वर्णनों से यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि—

भगवान श्रीकृष्ण का संपूर्ण व्यक्तित्व दिव्य है, असामान्य है, लोकविलक्षण है। उनका जन्म, उनका बाल्य, उनका तारुण्य उनका जीवन, उनका प्रयाण—सभी अद्भुत हैं, अपूर्व हैं—अत्यंत गहन हैं, अगम्य हैं। संपूर्ण संसार को जो मुक्त करने आये थे उनका स्वयं का जन्म हुआ कारागार के बंधन में। आजन्म जीवन निरंतर दुःख-कष्टों, बाधा-विघ्नों और संघर्षों से सामना करते हुए बीता, परंतु वे कैसे शांत-निर्विकार रहे! एक ओर अत्युच्च मान-सम्मान-पूजन और दूसरी ओर घोर अपमान-अवहेलन-आक्रमण—किन्तु वे कभी विचलित नहीं हुए। देहत्याग भी देखिए न, कैसे सब के अनजाने एकान्त में, अपनी इच्छा से किया।

उनका व्यक्तित्व कितने ही अलौकिक गुणों से भरा है। उनका सौंदर्य-माधुर्य, उनका शौर्य-वीर्य-धैर्य, उनका पराक्रम, उनकी तेजस्विता, युद्धकुशलता, नृत्य-गीत-विद्यादिकला-निपुणता, वाक्पटुता बुद्धिमत्ता, व्यवहार-दक्षता सभी अतुलनीय हैं। फिर उनका त्याग-वैराग्य-ज्ञान उनका उदासीन अनासक्त भाव, उनकी सहनशीलता, उनकी प्रीति करुणा, भक्तवत्सलता असाधारण है, दिव्य है।

जीवन के सभी आदर्शों की परिपूर्ति हम उनमें पाते हैं। वे आदर्श पुत्र हैं, आदर्श सखा हैं, आदर्श प्रेमिक हैं, आदर्श पति हैं, आदर्श शिष्य हैं, आदर्श गुरु हैं, आदर्श तत्त्वज्ञ हैं, आदर्श नेता हैं, आदर्श गृहस्थ हैं, आदर्श

संन्यासी हैं, आदर्श देव हैं, आदर्श मानव हैं, इसीलिए तो वे युगों में हमारे आबालवृद्ध-स्त्रीपुरुष सभी के हृदय में इतना उच्च स्थान अधिकार किये विराजमान हैं। वे ही हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में पूर्णत्व का आदर्श बने बैठे हैं। हमारे साहित्य का, हमारे काव्य-संगीत का, हमारे नृत्य-नाट्य का, हमारी चित्रकला-शिल्पकला का, हमारी संस्कृति का, हमारी पूजा-उपासना का, हमारी भक्ति-प्रीति का प्राण बने हुए हैं।

उनके अलोकसामान्य चरित्र का अथ से इति तक सभी कुछ दिव्य माधुरी से ओतप्रोत है श्री वल्लभाचार्य के शब्दों में—

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरंवलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।

श्रीकृष्ण-चरित्र के इस माधुर्य से आकर्षित हो जब हम उनके स्वरूप की ओर दृष्टिक्षेप करते हैं तो हमें स्पष्ट दृग्गोचर होता है कि ये मानव नहीं, देव हैं। और उनके स्वरूप की दिव्यता में हम जितना अधिक अवगाहन करते हैं उतना ही हमारा मन इस असार अनित्य संसार से परे अवस्थित एक अपार्थिव, अतीन्द्रिय राज्य की ओर खिंच जाता है। और इसीलिए तो ये लीलामानव इस धराधाम में अवतीर्ण होते हैं ताकि उनके लीलाजीवन के अवलंबन से हम उनके नित्यस्वरूप में पहुंचकर मुक्त हो जाएँ। भगवान श्रीकृष्ण के स्वयं के शब्दों में—

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"जो मेरे दिव्य जन्म एवं कर्मों को इस प्रकार तत्त्वतः जान लेता है वह देहत्याग के बाद फिर इस संसार में नहीं जन्मता—इस जन्म-मरण के चक्र में फिर नहीं फँसता। वह तो मुझी को प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है।

स्वयं के स्वरूप के विषय में भगवान श्रीकृष्ण निःसंदिग्ध शब्दों में कहते हैं—मैं अजन्मा, अपरिवर्तनशील परमेश्वर हूँ, मैं अपनी ही माया से सुजनों का उद्धार, दुर्जनों का निर्दलन तथा धर्म की संस्थापना करने पुनः पुनः अवतीर्ण होता हूँ।"

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

मनुष्य देवता बन सके, इसलिए देवता मनुष्य बनकर आते हैं। मनुष्य ऊपर उठ सके, इसलिए देवता नीचे उतर आते है। इसीलिए उन्हें अवतार कहते हैं। अवतार यानी जो अवतरण करता है—नीचे उतर आता है। ये अवतार देवमानव हैं, लीलामानव हैं, माया-मनुष्य हैं। मानव का रूप है, पर हैं देवता। मानव जैसे आचार-व्यवहार, क्रिया-कलाप कर रहे हैं, पर सभी कुछ दिव्य है।

ज्ञानगुरु भगवतपूज्यपाद आचार्य शंकर भगवद्गीता के उपोद्घात में ही गीता के उद्गाता श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप का हमें स्मरण दिलाते हुए अपनी प्रसन्नगंभीर शैली में कहते हैं—

"स च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिवीर्यतेजोभिः सदा संपन्नः त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां मूलप्रकृतिं वशीकृत्य, अजोऽव्ययो भूतानाम् ईश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽपि स्वमायया देहवानिव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वन् इव लक्ष्यते।" ऐसा लगता है मानो वे जन्मे हैं, वे शरीर धारी हैं, वे लोगों पर दया कर रहे हैं।

ज्ञानी ही क्यों, भक्तिमती गोपियों का भी यही अनुभव है कि श्रीकृष्ण मूर्तिमान वेदान्तसिद्धान्त हैं—वेदान्त के सिद्धान्तस्वरूप परब्रह्म हैं। एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है—

शृणु सखि कौतुकमेकं नंदनिकेतांगणे मया दृष्टम्।
गोधूलि धूसरांगो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः ॥

—'सखि सुन, मैंने नंदबाबा के आंगन में एक अद्भुत बात देखी। संध्या की बेला में घर लौटती गौओं के खुरों से उड़नेवाली धूल से भरी देह लिए प्रत्यक्ष वेदान्तसिद्धान्त (परब्रह्म) मोदमगन हो नाच रहा था।'

भक्तकवि रसखान इस भाव का बड़ा ही मनोरम चित्रण करते हैं—

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि आनदि अनन्त अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं

तो यह है भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप। यह है उनका व्यक्तित्व। अत्यन्त संक्षेप में—वे हैं वसुदेव के पुत्र के रूप में आये परब्रह्म। वासुदेवाख्यं परब्रह्म।

अभिव्यक्ति

अब हम भगवान श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति की ओर, उनके व्यक्तित्व के बाह्य प्रकाश की ओर—बढ़ेंगे। भगवान् के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के दो पहलू हैं—उनके कार्य और उनके उपदेश। इन्हीं दो माध्यमों से उनका दिव्य स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। अपने अत्यन्त कर्मव्यस्त लीलाजीवन में श्रीकृष्ण ने जो महान् और विलक्षण कार्य किये उनकी केवल गणना या उल्लेख करना भी इस अल्प समय में संभव नहीं है। इसलिए हम उनके कार्यों की चर्चा न कर उनके उपदेशों के माध्यम से प्रकट होनेवाली अभिव्यक्ति का ही विचार करेंगे। वैसे तो उनके उपदेश भी असंख्य हैं, अगाध हैं, किन्तु हम यहाँ पर उनमें से कुछ विशिष्ट उपदेशों का मर्मग्रहण करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने जीवन के तीन विशिष्ट कालखंडों में तीन प्रकार के विशिष्ट व्यक्तियों को जो विशिष्ट उपदेश प्रदान किये थे उन्हीं का सारांश हमारे अनुशीलन का विषय होगा।

उपदेश

आलोचना की सुविधा की दृष्टि से हम भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन को तीन भागों में बाँट लेते हैं—

१. पूर्व भाग :—व्रजपर्व—रासलीला के प्रसंग में भक्त गोपियों के प्रति उपदेश।

२. मध्यभाग :—मथुरापर्व—कुरुक्षेत्र में प्रियसखा अर्जुन के प्रति उपदेश।

३. उत्तरभाग :—द्वारकापर्व—लीलासंवरण के प्रियभक्त उद्धव के प्रति उपदेश।

१. आदिपर्व गोपियों के प्रति उपदेश :—

आइए, अब हम भगवान् श्रीकृष्ण की परम अनुरागिनी गोपियों के प्रति उपदेशों का श्रवण करें। चलिए व्रजधाम की ओर।

तमालराजि से सुशोभित श्यामल वृन्दावन! कलनादिनी कज्जलजला कालिंदी का सुरम्य तट। प्रसन्न शरद् ऋतु की शांत सुहावनी रात। मेघयुक्त गगन की नीलिमा में पूर्णचन्द्र की सौम्य किरणें विराज रही हैं। वन पुष्पों की मधुर सुगंध लिये मंद मंद पवन बह रहा है। आज कार्तिम पूर्णिमा है—रासपूर्णिमा!

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः।

—योगमायाधीश योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने कृष्णमयजीविता गोपबालाओं को आज रासक्रीड़ा का अभिवचन दिया था। अब वे अपनी मुरली में मधुर मनोहर तान छेड़ते हुए वृन्दकानन को मुखरित करने लगे। उस तान को सुनते ही व्रजवासिनियों के हृदय पुलकित हो उठे। कानों से प्रवेश कर उसी वंशीध्वनि ने उनके प्राणों को जगा दिया। उनका 'मैं-मेरा' का भान जाता रहा। घर-द्वार, कर्त्तव्य-कर्म, आत्मीय-स्वजन, लोकलाज सब भूल गये। इतनी प्रिय जो स्वदेह—उसका भी विस्मरण हो गया। 'तू-तेरा' बोध

का उदय होकर उसी के रंग में उनकी सारी चित्तवृत्तियाँ रंग गयीं। जिस प्रकार स्रोतस्विनी नदी सागर से मिलने, उसमें स्वयं को मिटा देने के लिए अधीर वेग से प्रधावित होती है, उसी प्रकार ये परम अनुरागिनी व्रजगोपियां कृष्ण मिलन की व्याकुल उत्कंठा लिये उस मुरलीध्वनि की दिशा में दौड़ पड़ीं। उनमें से कुछ गोपियों को उनके घरवालों ने रोक लिया। किन्तु शरीर की गति के अवरुद्ध होने पर भी मन की गति तो अबाध ही रही। वे अवरुद्ध गोपियाँ विरहव्याकुल हो श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न हो गयीं। कृष्णवियोग की प्रबल पीड़ा में देह छोड़कर वे परमभाग्यवती गोपियाँ सब बंधनों से मुक्त हो श्रीकृष्णचरणों में चिरविलीन हो गयीं।

आत्मीय-स्वजनों के बंधन-अवरोध को न मान जो गोपियाँ श्रीकृष्ण के समीप जा उपस्थित हुईं, उनके प्रेम की परीक्षा लेने के लिए भगवान उनसे बोले —"गोपियो, ऐसी भयावनी रात के समय तुम इस वन में क्यों आयीं? यदि तुम मेरे प्रति प्रेम से प्रेरित हो मुझे देखने आयी हो, तो अब तुम्हारी वह इच्छा पूरी हो गयी। अब तुम शीघ्र घर लौट जाओ। कुलस्त्रियों का ऐसे समय घर से बाहर रहना उचित नहीं है।"

यह अद्भुत बात सुनकर गोपियों के तो मानो होश ही उड़ गये। दुःखावेग से विह्वल हो अश्रुगद्गद स्वर से वे कहने लगीं —

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
संत्यज्य सर्वविषयान् तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥

"प्रभो, तुम ऐसे कठोर वचन मत बोलो। सभी विषयों का त्याग कर हम तुम्हारे चरणों में आयी हैं। हमारा त्याग मत करो। आदिपुरुष भगवान् जिस प्रकार मुमुक्षु भक्तजनों को ग्रहण करते हैं उसी प्रकार तुम हमें स्वीकार करो प्रभो।"

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु।
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलात्।
यामः कथं व्रजमथो करवाम किंवा।

"मनमोहन! घर-द्वार, सगे-संबंधी, कामकाज आदि में मग्न हमारे चित्त को तो तुमने हर लिया। अब तुम्हें छोड़ हम एक पग भी चलने में असमर्थ हैं। भला अब हम व्रज में जाएँ तो जाएँ कैसे और जाकर करें भी क्या?"

अन्त में वे कहती हैं—"हे प्राणसखे, तुमने यदि हमें नहीं स्वीकारा, हमारी विरहव्यथा को शांत नहीं किया, तो विरहतापदग्ध हम तुम्हारे श्रीचरणों का ध्यान करती हुई देहत्याग कर तुमसे चिरमिलित हो जावेंगी।"—

"नोचेत् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहाः ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते।"

गोपियों के अनन्यगतिक प्रेम को देख प्रेमसिंधु भगवान् का चित्त द्रवीभूत हो गया। प्रसन्न होकर वे योगेश्वरेश्वर आत्माराम उन परमभाग्यवती गोपिकाओं के साथ यमुनातट में रासक्रीड़ा करने लगे।

'रास' का अर्थ क्या है?—'रसस्य अयं रास.' जो रस से ओतप्रोत है वह रास है। और यह रस कौनसा 'रसो वै सः' वही एकमेव अद्वितीय भगवान्। वे रसस्वरूप भगवान् स्वयं आस्वादक और अस्वाद्य के रूप में— लीलाविलास करने लगे।

परमज्ञानी जीवनमुक्त शुकदेव कहते हैं "रेमे रमेशो व्रजसुंदरीभिः यथार्भकः स्वप्रतिबिंब विभ्रमः।"—श्रीकृष्ण ने व्रजगोपिओं के साथ यह रासलीला किस प्रकार की? —जैसे सरल बालक दर्पण में प्रतिबिंबित अपने ही प्रतिबिंब के साथ खेला करता है। श्रीकृष्ण बिंब और गोपियाँ उनकी प्रतिबिंब। श्रीकृष्ण काया और गोपियाँ उनकी छाया।

क्रीड़ा के आरंभ में गोपियों का भी यही बोध था। किंतु मानवमन का स्वभाव ही ऐसा विचित्र है कि वह अभेद एकत्व के बोध को अधिक समय तक नहीं रख पाता। "भगवान् हमारे साथ रासलीला कर रहे हैं। संसार की समस्त स्त्रियों में हम सौभाग्यशालिनी हैं'—इस प्रकार उनके हृदय में सूक्ष्म अहंभाव का उदय हुआ अखंड अभेद त्वं-बोध के इस प्रकार खंडित द्विधाविभक्त होते ही अखंड-एकरसस्वरूप भगवान् गंभीर हो गये। भक्त के हृदय से इस अहंरूपी अमंगल परदे को दूर करने के लिए वे भक्तदर्पहारी सर्वगर्वखर्वकारी तत्काल उनके बीच से अंतर्धान हो गये।

"तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

परमभक्ति या दिव्यप्रेम में परमप्रेमास्पद के साथ योग होना जिस प्रकार आवश्यक है, उसी प्रकार इस क्षुद्र 'मैं' से वियोग होना भी आवश्यक है। 'मैं और प्रभु' दोनों एक जगह नहीं रह सकते। कबीरदासजी कहते हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं, मैं नाहिं।
प्रेमगली अति सांकरी, तामें दोउ न समाहिं॥

* * *

अस्तु। भगवान् के इस प्रकार सहसा अन्तर्धान हो जाने पर गोपियों के दुःख-शोक की सीमा नहीं रही। वे व्याकुल हो पागलों की तरह वन में इधर-उधर भटकती हुई श्रीकृष्ण को ढूंढ़ने लगीं। चेतन-अचेतन संपूर्ण सृष्टि में सर्वत्र श्रीकृष्ण की ही प्रतीति होने के कारण वे वृक्ष-लताओं और वनस्पतियों से पूछने लगीं—"बताओ, हमारा प्राणाधार, हमारा जीवन सर्वस्व श्याम कहाँ है?" श्रीमद्भागवत में इस मार्मिक प्रसंग का अत्यन्त सजीव चित्रण शुकदेवजी ने किया है। कृष्णचिंतन में विभोर गोपियाँ विलाप करती जाती हैं, कृष्णगुणगान करती जाती हैं, कृष्ण को ढूंढ़ती जाती हैं, पर कृष्ण नहीं मिलते। कारण इस अन्वेषण में अन्वेषक-अन्वेष्य का द्वैत है ही।

धीरे-धीरे हृदय की प्रबल वियोगवह्नि में उनका 'मैं-तू' द्वैत बोध दग्ध होने लगता है। वे 'हम गोपियाँ हैं' यह बोध विसर कर कृष्णबोध में इतनी विभोर हो जाती हैं कि स्वयं को कृष्ण ही समझने लगती हैं और कृष्ण-लीला का अभिनय करने लगती हैं। कोई कालिया-दमन का, कोई गोवर्धनगिरिधारण का, तो कोई मुरली-वादन का अभिनय करती है। सम्पूर्ण आत्मविस्मृत और भगवन्मय बनकर भगवान् की विभिन्न लीलाओं का अनुकरण करने लगती हैं। किन्तु अब भी श्याम नहीं प्रकट होते; क्योंकि इस आचरण के पीछे स्वयं के दुःख को भूलने का हेतु जो है! इसमें तो मैं-पन है ही।

जब सब प्रयत्न असफल हुए तो विफलमनोरथ गोपियाँ निरुपाय हो वन से निकलकर यमुनातट पर आ गयीं और सब चेष्टाएं छोड़कर रोती हुई श्रीकृष्ण को पुकारने लगी। अब उनका रोम-रोम कृष्णमय हो गया था। उनके हृदय का यह आकुल क्रन्दन भागवत में 'गोपीगीत' नाम से प्रसिद्ध है। अत्यन्त मधुर, भक्ति-रसपूर्ण प्रार्थनागीत है यह। छंद भी बड़ा मनोहर है,—जिसका नाम है इन्दिरा, कामदा या कनकमंजरी छंद। गोपियाँ कहती हैं—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

"प्रिय प्रभो, हम तुम्हारी हैं। देखो, तुम्हारे ही लिए प्राणधारण करनेवाली तुम्हारी गोपियाँ तुम्हें कैसी व्याकुल हो ढूंढ़ रही हैं। प्रभो, प्रकट होओ, दर्शन दो।"

न खलु गोपिकानंदनो भवान् अखिल देहिनामंतरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

"हम जानती हैं प्रभु, तुम वस्तुतः यशोदानंदन नहीं हो, तुम समस्त देहधारियों की अंतरात्मा हो, साक्षी हो। ब्रह्माजी की प्रार्थना से विश्व की रक्षा के लिए तुम यदुवंश में अवतीर्ण हुए हो।"

देखिए, गोपिओं का श्रीकृष्ण के प्रति क्या बोध था ! वे उनके भगवत्स्वरूप को अच्छी तरह जानती हैं। इसीलिए तो भक्ति के आचार्य देवर्षि नारद अपने प्रसिद्ध भक्ति सूत्रों में गोपियों की भक्ति का उदाहरण देते हुए कहते हैं--"यथा ब्रजगोपिकानाम् न तत्रापि माहात्म्यज्ञान-विस्मृति अपवादः। तद्विहीनं जाराणामिव।"

गोपियाँ शरणागत हो प्रार्थना कर रही थीं किन्तु फिर भी आरंभ में भाव था—'हमारा विरह दुःख असह्य हो रहा है, हमें दर्शन दो।' धीरे-धीरे वह भाव भी लुप्त हो जाता है। अब वे कहती हैं—

चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कांत गच्छति ॥

"हे नाथ, जब तुम गौओं को चराने के लिए व्रज से निकलते हो तब इस विचार से कि तुम्हारे कमल से भी कोमल चरणों में कंकड़-तिनके आदि गड़ने से तुम्हें कष्ट हो रहा होगा, हमारा मन बेचैन हो उठता है।"

"प्रियतम, तुम्हारे सुकोमल चरणों को वन में भटकने के कारण कितनी पीड़ा हो रही होगी—इस चिंता से हमारी मति भरमा रही है।"

अब वे स्वयं के दुःख को भूल श्रीकृष्ण के दुःख से दुःखी हो गयीं। तद् दुःख दुःखित्वभाव में मग्न हो गयीं। 'स्व' का पूर्ण रूप से विलय हो गया, 'त्वं' ने संपूर्ण हृदय को व्याप्त कर डाला। कोई व्यवधान नहीं रह गया। बस, भगवान् के अंतर्धान का प्रयोजन सिद्ध हो गया। वे तत्काल मुस्कुराते हुए उनके बीच प्रकट हो गये।

तासाम् आविरभूत् शौरिः स्मयमानमुखांबुजः।
पीतांबरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

प्रत्यक्ष मदन के भी मन को मथ डालनेवाला रूप लिये, माल्यविभूषित, पीतांबरधारी, आनंद-कंद नंदनंदन मुखारविंद में मंद मंद मुस्कान लिये गोपियों के बीच आविर्भूत हुए।

गोपियाँ आनंद में विभोर हो गयीं।

***

अब भगवान् के इस आचरण पर किंचित् रोष व्यक्त करते हुए कुछ गोपियों ने पूछा—

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥

"प्रभो ! संसार में कुछ लोग अपने से प्रेम करने-वाले से ही प्रेम करते हैं, और कुछ लोग अपने से प्रेम न करनेवालों से भी प्रेम करते हैं। फिर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो दोनों से ही प्रेम नहीं करते। इन तीनों में कौन श्रेष्ठ है--हमें बताओ।" आशय यह कि इन तीनों में से तुम किस श्रेणी में आते हो ?

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं--

मिथो भजंति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थः तद्धि नान्यथा ॥

"गोपियो, सुनो ! जो अपने पर प्रेम करनेवालों से ही प्रेम करते हैं, उनका सारा उद्योग स्वार्थ को लेकर ही है। उनमें न सौहार्द है, न धर्म। उनका प्रेम केवल स्वार्थ के लिए है।" फिर

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥

"जो लोग प्रेम न करनेवालों से भी प्रेम करते हैं, उनमें दो प्रकार हैं—करुणाशील साधु-संत और माता-पिता आदि। साधु-संत निरपेक्ष बुद्धि से सब पर प्रेम करते हैं इसलिए उन्हें सद्धर्म की प्राप्ति होती है, सुख मिलता है। माता-पिता आदि 'ममत्व'—बुद्धि से प्रेम करते हैं। इससे उन्हें सुख मिलता है और दुःख भी।"

"अब जो दोनों से—प्रेम करनेवालों से और प्रेम न करनेवालों से भी—प्रेम नहीं करते उनके चार प्रकार हैं—"

भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः॥

'एक तो वे जो आत्माराम हैं—आत्मस्वरूप में रममाण होनेवाले महापुरुष हैं। दूसरे वे जो आप्तकाम हैं—सभी विषयों के प्रति निरिच्छ हुए ज्ञानीपुरुष हैं। तीसरे वे जो अकृतज्ञ हैं—मूर्ख या पागल हैं—जो जानते ही नहीं कि कौन हमसे प्रेम करता है। चौथे वे जो गुरुद्रोही—भयंकर अपराधी, कृतघ्न हैं—उपकारी का भी बुरा चाहने वाले हैं।"

गोपियों की शंका तीव्र हो उठती है कि इनमें से श्रीकृष्ण किस श्रेणी के हैं। क्योंकि वे गुरुद्रोही या अकृतज्ञ तो हैं नहीं—फिर उन्हें साधारण अर्थ में आत्मकाम या आत्माराम भी नहीं कहा जा सकता।

भगवान निःसंदिग्ध उत्तर देते हैं—

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषाम् अनुवृत्ति वृत्तये।
यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद॥

"किंतु गोपियों, मेरी बात संपूर्ण निराली है। आत्माराम महापुरुषों का आराम आत्मा में—विराट 'स्व' में—रहता है, पर मैं इस 'स्व' से भी परे हूँ। मेरे प्रेम का स्वरूप संपूर्ण भिन्न है—उसकी जात ही अलग है। कोई मुझ पर खूब प्रेम करे, मुझे खूब भजे, तो भी मैं उसे सुख नहीं देता, उससे प्रेम नहीं करता। क्यों? इसलिए कि मैं चाहता हूं—उसका प्रेम बाहर ही बाहर, ऊपर ही ऊपर न रहे, वह गहरा बने, आन्तरिक बने। यदि दीन दरिद्र व्यक्ति को कभी बहुत सा धन मिल जाए और फिर अचानक वह खो जाए या लुट जाए तो उसका चित्त उस धन की चिंता में कैसे सदा व्याकुल रहेगा? मेरे भक्त का चित्त इसी प्रकार मेरे लिए सदा व्याकुल रहे इसीलिए मैं उसे एक झलक दिखलाकर बिछुड़ जाता हूं।"

एवं मदर्थोज्झितलोक वेदं
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः॥

'प्यारी गोपियो, तुमने मेरे लिए लोक छोड़ा, परलोक छोड़ा, अपना स्वार्थ छोड़ा, सर्वस्व छोड़ा। अब तुम्हारे प्रेम की गति दूसरी ओर न जाए, उसमें से 'मैं-मेरा' का विष पूरा निकल जाए, इसीलिए मैं तिरोहित हो गया। वरना तुम तो मुझे अत्यंत प्रिय हो। तुम मेरे इस आचरण में दोष मत देखो।"

"मैं तुम्हारा कितना ऋणी हूं। अनंतकाल तक प्रयत्न करते रहने पर भी मैं तुम्हारे अनुपम प्रेम के ऋण से मुक्त नहीं हो सकूंगा।"—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्व साधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृंखलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

* * *

तो ये हैं भगवान श्रीकृष्ण के गोपियों के प्रति उपदेश।

* * *

परम अनुरागिनी गोपियों के इस दिव्य प्रेम की महिमा को स्वयं शुकदेव—जो मूर्तिमान वैराग्य हैं, आबाल संन्यासी और समाधिमान् जीवन्मुक्त महापुरुष हैं—गाते हैं। और अंत में कहते हैं कि जो कोई श्रद्धायुक्त होकर ठीक-ठीक भावसहित गोपियों के साथ भगवान् की इस विमल अकलंक प्रेमगाथा का श्रवण-वर्णन करेगा, उसे पराभक्ति प्राप्त होगी और शीघ्र ही वह हृदय का भयंकर असाध्य रोग जो काम है उससे मुक्त हो जाएगा।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य, कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

रासलीला के संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं :—

"श्रीकृष्ण के जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना को समझना अत्यंत कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नहीं बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नहीं।

"पहले कांचन, नाम तथा यश और क्षुद्र मिथ्या संसार के प्रति आसक्ति को छोड़ो। तभी, केवल तभी तुम गोपी-प्रेम को समझोगे। यह इतना विशुद्ध है कि बिना सब कुछ छोड़े इसको समझने की चेष्टा करना ही अनुचित है। जब तक अन्तःकरण पूर्ण रूप से पवित्र नहीं होता, तब तक इसको समझने की चेष्टा करना वृथा है।

"कृष्ण-अवतार का मुख्य उद्देश्य यही गोपी-प्रेम की शिक्षा है। यहाँ तक कि गीता का महान् दर्शन भी इस प्रेमोन्मत्तता की बराबरी नहीं कर सकता। क्योंकि गीता में साधक को धीरे-धीरे उसी चरम लक्ष्य मुक्ति के साधन का उपदेश दिया गया है, किंतु इसमें रसास्वाद की उन्मत्तता, प्रेम की मदोन्मत्तता विद्यमान है। यहाँ गुरु और शिष्य, शास्त्र और उपदेश, ईश्वर और स्वर्ग सब एकाकार हैं, भय के भाव का चिह्न मात्र नहीं है; सब बह गया है—शेष रह गयी है केवल प्रेमोन्मत्तता। उस समय संसार का कुछ की स्मरण नहीं रहता है। भक्त उस समय संसार में उसी कृष्ण, एकमात्र उसी कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता, उस समय वह समस्त प्राणियों में कृष्ण के ही दर्शन करता है, उसका मुँह भी उस समय कृष्ण के ही समान दीखता है, उसकी आत्मा उस समय कृष्णमय हो जाती है। यह है कृष्ण की महिमा। ....ऐसा श्रेष्ठ आदर्श और कभी चित्रित नहीं हुआ।" ..

२. मध्यपर्व—अर्जुन के प्रति उपदेश :—

आइए, अब हम भगवान् श्रीकृष्ण के अपने प्रियसखा अर्जुन के प्रति दिये उपदेशों का सारांश ग्रहण करेंगे। चलिए कुरुक्षेत्र के समरांगण में।

धर्म्ययुद्ध में जय-पराजय की आशा न रखते हुए लड़ना क्षत्रियों का स्वधर्म है। स्वधर्म का आचरण करते हुए—निष्काम भाव से स्वभावनियत कर्म का आचरण करते हुए—उसके द्वारा भगवान् को प्रसन्न कर मोक्ष प्राप्ति करने की आकांक्षा लिए वीरसाधक कृष्ण-सखा अर्जुन धर्मयुद्ध में प्रवृत्त होता है। किंतु समरभूमि में आकर विपक्ष में स्वजनों को देख उसके हृदय में आसक्ति की बाढ़ उमड़ पड़ती है। 'मैं-मेरा' रूपी भ्रमांधकार उसके विवेक को ग्रस लेता है। शोकमोह के सागर में डूबा अर्जुन व्याकुल, किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है। अविवेकवश स्वधर्म (युद्ध) उसे दोषयुक्त प्रतीत होने लगता है और प्रतिषिद्ध धर्म (संन्यास) के सेवन करने की प्रवृत्ति होने लगती है। संसार के बीज-भूत दोष शोक-मोह का नाश आत्मज्ञान के बिना दूसरे किसी भी उपाय से संभव नहीं, यह जानकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रियसखा को आत्मज्ञान का अजर-अमर उपदेश देते हैं और अर्जुन को निमित्त कर हम लोगों को भी वह चिरंतन सत्य का संदेश सुनाते हैं। यह समूचा उपदेश—जो श्रीमद् भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध है—अत्यंत गूढ़ गहन है और इसका अनुशीलन एक संपूर्ण जीवनव्यापी साधना का विषय है।

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—

"अर्जुन को जिस मोह ने घर दबाया है उसके निवारण के लिए भगवान् ने क्या कहा ?— "क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ—हे पृथापुत्र, नपुसंकता को न प्राप्त हो। यदि दुनिया में कोई ऐसी वस्तु है जिसे पाप कहा जा सकता है, तो वह हैं—'भय'। जान लो कि जिस किसी काम से तुममें सुप्त शक्ति जग जाए, वह पुण्य है; और तुम्हारे शरीर और मन को निर्बल बनाले, वह सचमुच पाप है। इस निर्बलता और इस हृदय-दुर्बलता को दूर भगाओ !"

"इसी एक श्लोक में पूरी गीता का संदेश निहित है।"

यहाँ पर हम कर्मयोग के उस प्राणभूत श्लोक का आशय देखेंगे, जिसे गीताधर्म का सार कहा जा सकता है। भगवान् कहते हैं—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

"अर्जुन, जिससे समस्त जीवों की उत्पत्ति हुई है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं, उस सर्वान्तरयामी एकमेवाद्वितीय विश्वरूप परमपुरुष की स्वकर्म रूपी कुसुमों से अर्चना करते हुए मनुष्य, अपने जीवन में चरम सिद्धि यानी मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

किन्तु केवल कर्म से यह साध्य नहीं होता। वही एकमेवाद्वितीय प्रभु मुझमें और जगत् की सभी वस्तुओं एवं व्यक्तियों में लीलायमान हैं, यह बोध या ज्ञान उस कर्म में अनुस्यूत रहना चाहिए। 'मैं यंत्र हूँ, प्रभु यंत्री हैं' 'मैं निमित्तमात्र हूँ, प्रभु कर्ता हैं' यह भाव उस स्वकर्म-आचरण में विद्यमान होना चाहिए - तभी वह कर्म कर्मयोग में परिणत होगा, साधक को प्रभु के साथ 'युक्त' करने में समर्थ होगा। फिर भगवान कहते हैं— केवल कर्म और ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। इस बोधयुक्त कर्म के द्वारा मैं उस सर्वात्मक प्रभु की अर्चना-पूजा-आराधना कर रहा हूँ, यह भक्तिभाव उसकी पृष्ठ-भूमि में विद्यमान होना चाहिए। नहीं तो वह कर्मयोग केवल बुद्धि के ही कक्ष तक सीमित रह जाएगा— हृदय का स्पर्श नहीं कर पाएगा। वही सच्चिदानंदसागर 'मैं-मेरा'—रूपी तरंगों के रूप में लीलाविलास कर रहा है, यह बोध लेकर सेवा-पूजाभाव से कर्म करने पर लीला-मय भगवान् से योग होता है। यही कर्म की कुशलता है—योगः कर्मसु कौशलम्।

तात्पर्य—ज्ञान एवं भक्ति से समन्वित कर्म के सहारे इस सर्वभूतमय भगवान् से युक्त होने पर मानव को चरमसिद्धि—मुक्ति—प्राप्त होगी।

अर्जुन को, और उसके निमित्त से हम सभी को, सदय आशीर्वाद देते हुए भगवान् कहते हैं—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादाद् अवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

जो सदा 'मैं और मेरा' का आसरा छोड़ 'प्रभु' 'तू और तेरा' का—मुझ परमेश्वर का—आश्रय लेकर सब कर्म करता है, वह मेरे अनुग्रह से उस नित्य अचल परमपद को प्राप्त होता है।

और भी अनेक उपदेश देकर भगवान् अर्जुन की आँखें खोल देते हैं। उसका मोह नष्ट हो जाता है। ग्लानि छोड़ वह जीवन-संग्राम में जूझने को उठ खड़ा हो जाता है। भगवान् उससे प्रेमपूर्वक पूछते हैं—

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥

कृतज्ञतापूर्ण गद्गद स्वर में अर्जुन कहता है —

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥

— हे अच्युत, अचल स्वभाव प्रभो, तुम्हारे कृपा-प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हुआ, मेरी सुध लौट आयी। मैं संपूर्ण रूप से संदेहमुक्त हुआ। अब तुम जो कहोगे, वही मैं करूंगा।

तो यह हुआ भगवान् श्रीकृष्ण का अर्जुन के प्रति कर्मयोग के संदर्भ में दिये गये उपदेश का सारमर्म।

* * *

३ अंत्यपर्व--उद्धव के प्रति उपदेश

अब हम भगवान् के अपने प्रियभक्त उद्धव के प्रति दिये गये उपदेशों का सारमर्म ग्रहण करेंगे।

चलिए द्वारकाधाम। भगवान् अपना अवतारकार्य पूर्ण कर चुके हैं। अब लीलासंवरण करने की प्रस्तुति है। मर्त्यदेह छोड़कर दिव्यधाम को सिधारने का निश्चय कर लिया है। परमभागवत भक्तप्रवर उद्धव, जो भगवान् के प्रेमी सेवक और बाल सखा थे, इस बात को जानकर अत्यन्त विह्वल हो उठते हैं। व्याकुल होकर कहते हैं—

नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥

—"प्रभो, मैं आधे क्षण के लिए भी तुम्हारे चरण-कमल को नहीं छोड़ सकता। हे नाथ; तुम अपने साथ मुझे भी निजधाम ले चलो।"

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् :
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्य स्पृहां जनः ॥
शय्यासनाटनस्थानस्नान क्रीडाशनादिषु ।
कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥
त्वयोपभुक्त स्रग्गंधवासोऽलंकार चर्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥

—"सखा श्रीकृष्ण, तुम्हारी लीला मनुष्यों के लिए परम मंगलमयी हैं, वह कानों के लिए अमृतस्वरूप हैं। एक बार उसका आस्वादन करने पर फिर दूसरे विषयों की लालसा नहीं रह जाती। फिर प्रभो, हम तो उठते-बैठते, सोते-जागते, घूमते-फिरते, खाते-पीते सब समय तुम्हारे साथ रहे। तुम हमारे प्रियतम हो, हमारी आत्मा हो। हम तुम्हारे भक्त हैं। हम तुम्हें भला कैसे छोड़ सकते हैं? प्यारे श्रीकृष्ण, हम तुम्हारे उतारे वस्त्र को पहननेवाले, तुम्हारी जूठन खानेवाले सेवक हैं। तुम्हारी माया को हम अवश्य ही जीत लेंगे। उस विषय में हमें कोई चिंता नहीं। किंतु प्रभो, तुम्हारा वियोग हम कैसे सहन करेंगे?"

उद्धव की भक्ति के भीतर आसक्ति प्रवेश कर जाती है। 'मैं-मेरा' का भाव आकर हृदय को शोकाभिभूत कर देता है। भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव के इस भ्रांतिजन्य शोक को दूर करने के लिए उन्हें परमार्थज्ञान का उपदेश देते हैं। यह अंश श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध (मुक्तिस्कंध) में आता है। यह उद्धवगीता के नाम से प्रसिद्ध है। हम इसमें से कुछ प्रातिनिधिक उपदेशों के प्रति ही लक्ष्य केंद्रित करेंगे।

भगवान् ने उद्धव से कहा—

यदिदं मनसावाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ॥

—"उद्धव, इस संसार में जो कुछ मन से सोचा जाता है, वाणी से कहा जाता है, नेत्रों से देखा जाता है और श्रवणादि इंद्रियों से अनुभव किया जाता है वह सब नाशवान है। स्वप्न की भाँति मनोविलास है। इसलिए मायामय है। जब मनुष्य का मन चंचल होता है तो उसे अनेकता दिखाई देती है। मन के शांत एकाग्र होने पर यह द्वैत, अनेकता नहीं दिखाई देती।"

तस्माद् युक्तेंद्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ।
आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥

—"इसलिए उद्धव, तुम अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर, चित्त को शांत-समाहित कर लो और अनुभव करो कि सारा जगत् तुम्हारी आत्मा में स्थिर है तथा तुम्हारी आत्मा मुझ सर्वात्मा ब्रह्म से एक-अभिन्न है।"

सर्वभूतसुहृच्छांतो ज्ञान विज्ञाननिश्चयः ।
पश्यन् मनात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥

—"जो समस्त प्राणियों का हितैषी, शांत एवं ज्ञान में निश्चयसंपन्न हो गया है, वह इस संपूर्ण प्रतीयमान विश्व को मत्स्वरूप देखता है। उस पर जन्म-मरणरूप विपदा फिर कभी नहीं आती।"

यो विद्याश्रुतसम्पन्न आत्मवान् नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥

—"श्रुति के श्रवण-मनन-निदिध्यासनादि द्वारा जो अनुभव सम्पन्न आत्मवान् हो गया है, जो केवल तर्क-युक्ति-अनुमान पर ही निर्भर नहीं है, वह इस द्वैतप्रपंच को मायामात्र जानते हुए मुझमें समर्पण कर दे तथा इस निवृतिसाधक ज्ञान का भी मुझमें समर्पण कर दें।"

आत्मज्ञान ही मनुष्य को सब बंधनों से मुक्त करने में समर्थ है।

तस्माद् ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥

—"उद्धव, आत्मस्वरूप का ज्ञान लिये मेरी भक्ति करो मिथ्या अहंता-ममता लेकर नहीं। मेरी अनुभूति में

डूब जाओ। इससे तुम्हें मेरे वियोग का दुःख नहीं होगा।"

भगवान कहते हैं :—

प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा।
आद्यंतवद् असत् ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह॥

—"प्रत्यक्ष, अनुमान, शास्त्र और सहानुभूति आदि सभी प्रमाणों से यह जगत् असत्-अनित्य प्रमाणित होता है। यह जानकर यहाँ संगरहित, अनासक्त होकर विचरना चाहिए। किसी पर भी—वह कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो—आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।"

अब यह अनासक्ति, निःसंगता कैसे लायी जाए? प्रभु इसका सरल उपाय बतलाते हैं—सत्संग!

ततो दुस्संगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः॥

—"दुस्संग का त्याग कर सत्संग करो। संतजन वाणी से मन के व्यासंग को—असत् वस्तु में सत्यत्व बोध को—आसक्ति को नष्ट कर देते हैं।"

"सत्संग को भगवान् 'सर्वसंगापहः' यानी सब प्रकार की आसक्ति को नष्ट करनेवाला कहते हैं।"

अंत में श्रीकृष्ण उद्धव से पूछते हैं—

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम्।
अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः॥

और उद्धव कृतकृत्य हो कहते हैं—"हाँ प्रभु, आपके सत्संग से मेरा मोह-अंधकार सदा के लिए भाग गया। मेरे स्नेहपाश के दृढ़ बंधन तुमने आत्मबोध की तीक्ष्ण तलवार से अनायास काट डाले। अब तुम यही कृपा करो कि तुम्हारे चरणकमलों में मेरी प्रीति अचल बनी रहे।"

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की अमोघ अमृतवाणी का श्रवण कर उद्धव का चित्त शांत हो जाता है। भगवान् की आज्ञा से वे तपस्या करने के लिए बदरिकाश्रम को चले जाते हैं।

तो यह हुआ भगवान् के उद्धव के प्रति उपदेशों का सारांश।

* *

उपसंहार

इस तरह हमने भगवान् श्रीकृष्ण के तीन भिन्न-भिन्न प्रसंगों में दिये उपदेशों का अवलोकन किया। इन तीनों प्रकार के उपदेशों के दाता ग्रहीता दानरूप तीन घटकों में हमें अपूर्व साम्य-विलक्षण समानता-दिखाई पड़ती है।

उपदेश दाता श्रीकृष्ण की भूमिका तीनों प्रसंगों में समान है—अचल अटल निर्विकार। क्या रासक्रीड़ा का हर्षोत्फुल्ल मादक प्रसंग, क्या कुरुक्षेत्र के युद्ध का भीषण भयंकर प्रसंग, क्या स्वधामगमन का गंभीर वियोगव्यथा का प्रसंग। श्रीकृष्ण सब समय शान्त स्थिर उदासीन हैं। उनमें इंचमात्र चंचलता या क्षोभ नहीं।

तीनों प्रसंगों के उपदेशग्रहीताओं में भी विलक्षण साधर्म्य है। क्या प्रेमयोगिनी गोपियाँ, क्या कर्मयोगी अर्जुन और क्या भक्तियोगी उद्धव—प्रत्येक में भगवान के प्रति श्रद्धाविश्वास-प्रेम के रहते हुए भी प्रत्येक जीवन में 'मैं-मेरा' का उदय होता है। भ्रमप्रमाद उत्पन्न हो जाता है और वे शोकमोह से अभिभूत हो जाते हैं। गोपियों के भगवत्प्रेम के भीतर 'मैं-मेरा' ने प्रवेश करके उन्हें मदगर्वित कर दिया; अर्जुन के स्वकर्म के भीतर 'मैं-मेरा' ने प्रवेश करके उसे किंकर्तव्यमूढ़ बना डाला; उद्धव की भक्ति के भीतर 'मैं-मेरा' ने प्रवेश करके उन्हें शोकसागर में डुबा दिया। किंतु भगवान की कृपा से गोपियाँ, अर्जुन और उद्धव—इनमें से हर एक की मोहभ्रांति दूर हुई, हर एक को परमशांति का संधान मिला, हर एक का जीवन सफल हुआ, धन्य हुआ।

तीनों प्रसंगों के उपदेशदान में भी अद्भुत साम्य है। अंध प्रेम, बोधरहित कर्म, आसक्तिमय भक्ति-तीनों भगवत्प्राप्ति कराने में असमर्थ हैं। प्रेम, कर्म, भक्ति—चाहे किसी भी मार्ग का अवलंबन क्यों न किया जाए,

किन्तु उसमें से अहं-मम-'मैं-मेरा' का भ्रम पूरी तरह दूर हो जाना चाहिए। 'तू-तेरा' भाव के साथ उसका आचरण होना चाहिए। तभी सिद्धि मिलना संभव है।

भगवान श्रीरामकृष्ण के शब्दों में - अद्वैतज्ञान आँचले बेंधे जा इच्छा ताई कर : (आँचल में अद्वैत ज्ञान बाँध कर जो इच्छा हो वही करो।)

तो इस प्रकार हमने आनन्दकन्द नन्दनंदन के दिव्य व्यक्तित्व का तथा उपदेशों के माध्यम से प्रकट होनेवाली उनकी दिव्य अभिव्यक्ति का संक्षेप में यथाशक्ति अवलोकन किया।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु !

❀

धर्म और विज्ञान

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

"मानव जाति के भाग्य-निर्माण में जिन शक्तियों ने योगदान दिया है और दे रही हैं, उन सब में धर्म के रूप में प्रकट होने वाली शक्ति से अधिक महत्वपूर्ण कोई नहीं है।" (विवेकानन्द साहित्य, खंण्ड २, पृष्ठ १९१) अगर धर्म मानव जाति को प्रभावित करने वाली पुरातन शक्तियों में से एक है तो विज्ञान नवीनतम शक्तियों में एक है। ये दोनों, मानव के सुख-दुःख में, उसकी नियति के निर्धारण में आज भी अपनी महती भूमिका निभा रहे हैं। इन दोनों ने अनेक प्रकार से एक दूसरे का सामना किया है, एक दूसरे से टकराये हैं। इस टकराहट का सदियों का इतिहास रोचक भी है, और शिक्षाप्रद भी।

पिछले कुछ दशकों में विज्ञान और धर्म के परस्पर सम्बन्ध के विषय में सैंकड़ों पुस्तकें एवं लेखादि लिखे जा चुके हैं। वस्तुतः "विज्ञान और धर्म का विवाद" बुधजनों के लिए, विशेषकर पाश्चात्य देशों में, विचार एवं वार्तालाप का एक अत्यन्त रोचक और लोकप्रिय विषय रहा है। लेकिन भारत में यह विवाद कुछ दार्शनिकों तक ही सीमित रहा। जन साधारण ने इस विषय में कभी भी रुचि नहीं ली। इसका कारण यह है कि भारत जैसे धर्म प्रधान देश में धर्म सदा से जीवन का एक अभिन्न अंग बना रहा तथा समय समय पर सन्त एवं महापुरुष जन्म ले कर इसकी भित्ति को शक्ति प्रदान करते रहे। दूसरी ओर भारत में आधुनिक विज्ञान की ऐसी उन्नति कभी नहीं हुई जैसी विदेशों में हुई है तथा जो धर्म को चुनौती दे सके। तीसरा कारण यह है कि भारत में धर्म प्रत्येक नागरिक के दैनन्दिन जीवन का अंग है, और वह कभी भी एक सत्ताधारी संगठन या संस्था के अधिकार की वस्तु नहीं बना, जिसके स्वायत्ताधिकार को विज्ञान चुनौती दे सके, जैसा ईसाई 'चर्च' के विरुद्ध उसने किया था। लेकिन तकनीक के विकास के भारत में हो रहे आधुनिक प्रयास ने हम भारतवासियों को भी धर्म और विज्ञान के परस्पर सम्बन्धों के विषय में सोचने के लिये बाध्य किया है।

"विज्ञान बनाम धर्म" का तीन प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है। सर्वप्रथम तो हम धर्म व विज्ञान की परिभाषाएँ उनकी कार्य पद्धतियाँ, परिणाम, लक्ष्य, समाज पर उनका प्रभाव, उनके लाभ और हानियों का

तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। दूसरी पद्धति में हम धर्म व विज्ञान के सम्बन्धों को इतिहास की पृष्ठभूमि में देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की पृष्ठभूमि में धर्म का अध्ययन किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में विज्ञान व धर्म की टकराहट का इतिहास पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।

सर्व प्रथम धर्म व विज्ञान की परिभाषाएँ करना युक्ति संगत होगा। लेकिन ऐसा करने में संभवतः हम कठिनाई में पड़ जायेंगे। क्योंकि धर्म की लगभग एक दर्जन उपयुक्त और समीचीन परिभाषाएँ हो सकती हैं। शब्दकोष के अनुसार ईश्वर अथवा जगन्नियामक किसी अतीन्द्रिय सत्ता में विश्वास तथा उसके व्यक्ति एवं समाज पर प्रभाव धर्म कहलाता है। कुछ लोग धर्म को प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय मानते हैं। धर्म का एक नैतिक पक्ष भी है। धर्म विरोधी लोगों की दृष्टि में "धर्म समाज की अफीम" तथा पोंगापंथी तथा अन्ध-विश्वास से अधिक कुछ नहीं है। अधिकांश लोगों के लिए धर्म का अर्थ ईश्वर में विश्वास, पूजा अर्चना, क्रिया अनुष्ठान आदि ही है।

इसी तरह विज्ञान के भी कई अर्थ हैं। कुछ लोग इसे सत्य की खोज मानते हैं। अन्य लोगों की दृष्टि में यह विशुद्ध युक्तिवाद है। "ल्यूसीफेरा" तथा "फ्रक्टीफेरा" ये विज्ञान के दो पक्ष हैं। पहले के रूप में ज्ञान की विशुद्ध खोज ही विज्ञान है जबकि विज्ञान का जीवन में प्रयोग फ्रक्टीफेरा कहलाता है। इसके अतिरिक्त युक्ति-संगत एक वैज्ञानिक मनोवृति भी होती है। लेकिन सामान्य नागरिक विज्ञान से वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं तकनीक ही समझता है। अतः धर्म और विज्ञान की परिभाषा के झमेले में न पड़कर हम इनके परस्पर सम्बन्ध के इतिहास का अध्ययन करने का प्रयत्न करेंगे। इसी के माध्यम से हम इन दोनों के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।

(२)

धर्म के प्रभुत्व का काल :—

उपर्युक्त संघर्ष के काल को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम काल में धर्म का प्रभुत्व था, तथा आधुनिक काल धर्म और विज्ञान दोनों के पुनर्मूल्यांकन का समय है। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान मानव इतिहास में काफी नया है। धर्म सुनिश्चित रूप से अधिक पुरातन है। संसार के सभी धर्मों की उत्पत्ति ईश्वरावतारों, सन्तों, एवं ऋषियों की शिक्षाओं से हुई हैं, जिन्हें कालान्तर में ग्रन्थ-बद्ध किया गया। ये ईश्वरावतार इतने प्रतिभाशाली, एवं सशक्त व्यक्तित्व संपन्न थे, तथा उनमें ऐसी अलौकिकता रहती थी कि वे स्वयं में तथा अपनी शिक्षाओं के प्रति प्रभूत श्रद्धा एवं विश्वास अर्जित करने में समर्थ होते थे। उनका यह मौलिक आकर्षण और प्रभाव धीरे धीरे एक दर्जन पद्धति, कुछ क्रिया अनुष्ठान तथा एक जीवन पद्धत्ति के रूप में घनीभूत होकर एक परंपरागत धर्म का रूप ग्रहण कर लेते हैं। अतः विज्ञान और धर्म के प्रथम चरण में धर्म ही सर्वेसर्वा होता है। धर्म ग्रन्थ एवं सन्तों एवं पैगंबरों की वाणियाँ लौकिक और आध्यात्मिक सभी विषयों में एकमात्र अकाट्य प्रमाण के रूप में स्वीकृत होती हैं।

सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कोपर्निकस ने पूर्व-प्रचलित भूकेन्द्रिय जगत् की धारणा के विरुद्ध सूर्यकेन्द्रिय जगत् के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। जब उसकी नवप्रकाशित पुस्तकें प्रकाश में आयीं तब सौभाग्य से वे मृत्यु शैया पर थे। उनकी पुस्तक की प्रतियाँ जलायी गयीं, और यदि वे जीवित रहते तो उनकी भी यही गति होती। ऐसा ब्रूनो के साथ हुआ जो एक पादरी और वैज्ञानिक थे तथा जिनमें पोप के समक्ष तथ्यों को कहने का साहस था। ब्रूनो को धर्म-निष्कासित किया गया। उनको दर दर भटकना पड़ा, उनका गांव-गांव में पीछा किया गया, शारीरिक यातनाएँ दी गयीं, बन्दी बनाया गया और अन्त में जिन्दा जला दिया गया। इसके बाद इस निन्द्य नियति से साक्षात्कार करने वालों में आधुनिक

गणित विज्ञान एवं खगोल विज्ञान के जनक गैलीलियो का नाम आता है। उन्हें भी चर्च के अमानवीय एवं घोर विरोध का सामना करना पड़ा। मुस्लिम धर्म जगत भी इस कट्टरता एवं प्रतिबद्ध मानसिकता का अपवाद नहीं था। वहाँ भी लौकिक ज्ञान की अवमानना की गयी। जब इस्लाम की शक्तियों ने सिकंदरिया पर अपनी विजय-पताका फहरायी तब खलीफा अमर ने वहाँ विशाल पुस्तकालय को जलाने की आज्ञा दी। उनका तर्क यह था कि इसमें समाहित ज्ञान यदि कुरान में है, तब उसकी उपयोगिता ही क्या है। और यदि वह कुरान के बाहर है, तो वह हानिकारक न हो पर कम से कम निरर्थक तो है ही।

इसी तरह के किन्तु अपेक्षाकृत कम अनुदार विचारों की अभिव्यक्ति उपनिषदों में पायी जाती है। नारद ज्ञान के लिये सनत् कुमार के पास जाते हैं। सनत कुमार ने जानना चाहा कि नारद ने उससे पहले क्या सीखा है। तब नारद चार वेदों से प्रारंभ कर ज्ञान की विभिन्न विधाओं, कला एवं विज्ञान से लेकर ज्योतिष एवं धनुर्विद्या आदि की एक लंबी सूची प्रस्तुत करते हैं। किन्तु इतना सब ज्ञानार्जन करने पर भी नारद के दुःख की निवृत्ति नहीं हुई थी। तब सनत् कुमार ने कहा कि उनका समग्र ज्ञान नाम मात्र ही था। एक अन्य उपनिषद् में लौकिक ज्ञानों को अपरा विद्या तथा अध्यात्मज्ञान को उससे उच्च परा विद्या की संज्ञा दी गयी है जिसे प्राप्त करने पर सबकुछ जाना जा सकता है। लेकिन भारतीय परंपरा की यह दृष्टि पाश्चात्य देशों के मध्ययुगीन अन्ध-विश्वासी भक्तों की विज्ञान के प्रति घोर असहिष्णुता की तुलना में कुछ भी नहीं है। सुप्रसिद्ध अज्ञेयवादी वक्ता इंगरसोल ने एक बार स्वामी विवेकानन्द से कहा था कि यदि वे पचास वर्ष पूर्व अमेरिका में वेदान्त का प्रचार करने आते तो उन्हें जिन्दा जला दिया जाता।

प्रश्न उठता है कि धर्म लौकिक ज्ञान या विज्ञान का इतना तीव्र विरोध क्यों करता है? जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, धर्म शास्त्र-प्रमाण पर आधारित है, और शास्त्रों में विश्वजनीन शाश्वत् सत्यों के साथ ही साथ बहुत सी युक्तिहीन बातें भी रहती है जिन्हें शाश्वत् सत्यों की ही तरह पैगंबरों की अमोघ वाणी मान लिया जाता है। इस तरह की एक रूढ़ि या अनर्गल सिद्धान्त का वैज्ञानिक खंडन पूर्ण ग्रन्थ की, तथा पैगंबर की वाणी की ही सत्यता को चुनौती दे देता है। एक असंगत कथन का खंडन शास्त्र के प्रति विश्वास को हिला देता है और उसकी प्रामाणिकता के प्रति संशय पैदा कर देता है। परिणाम यह होता है कि शास्त्र पर आधारित समग्र वैचारिक जीवन-पद्धति टूटने लगती हैं।

किन्तु इस अंध विश्वास पर आघात के अतिरिक्त और भी गहरे और मनोवैज्ञानिक कारण हैं जिनके कारण अधिक उदार और विचारशील श्रद्धालु धार्मिक व्यक्ति विज्ञान की शुष्क, युक्तिवादी विधि का विरोध करने के लिये बाध्य होते हैं। उनके मतानुसार विज्ञान एक निश्चयात्मक जगत् की सृष्टि करता है। विज्ञान मानो सत्य को मानव बुद्धि की संकुचित सीमा में परिवृत्त करने का प्रयास करता है। किन्तु मानव बुद्धि के परे जाना चाहता है। और परमात्मा के साथ प्रेम व श्रद्धा के माध्यम से संपर्क स्थापित करना चाहता है। अतः बुद्धि समग्र सत्य को जानने का उपयुक्त माध्यम नहीं हो सकती। अतः धर्म का विरोध विज्ञान के अन्वेषणों से न होकर उसकी शुष्क तार्किकता से है।

(३)

विज्ञान का वर्चस्व :—

धर्म का यह प्रतिरोध अधिक समय तक न रहा और एक समय ऐसा आया जब विज्ञान का वर्चस्व स्थापित हो गया। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए धर्म ने सर्वतोभावेन संघर्ष किया किन्तु विज्ञान के द्वारा उद्घाटित सत्यों के समक्ष उसे पराभूत ही होना पड़ा। विज्ञान की प्रभुता के इस काल में जब पाश्चात्यवासी अपने प्राचीन विश्वास-परक धर्म में आस्था खो बैठे थे तथा अधिक युक्तिसंगत धर्म की खोज कर रहे थे, स्वामी विवेकानन्द अमेरिका गये थे। उन्होंने जो मार्ग अपनाया, जिस विचार पद्धति का अवलंबन लिया, उसे इस समस्या

के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों में से एक माना जा सकता है। स्वामीजी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि धर्म मूलतः वैज्ञानिक है तथा सच्चे धर्म की तुलना किसी भी वैज्ञानिक विधि से की जा सकती है। "राजयोग" की अपनी भूमिका में स्वामीजी कहते हैं: धर्म द्वारा प्रतिपादित इस सत्य को प्राप्त करने के लिये राजयोग-विद्या मानव के समक्ष यथार्थ व्यावहारिक और साधनोपयोगी वैज्ञानिक प्रणाली रखने का प्रस्ताव करती है।" (विवेकानन्द साहित्य प्रथम खंड पृ० ३८) इसीलिये योग-विद्या (विज्ञान) के आचार्यगण कहते हैं कि धर्म पूर्वकालीन अनुभवों पर केवल स्थापित ही नहीं, वरन् इन अनुभवों से स्वयं संपन्न हुए बिना कोई भी धार्मिक नहीं हो सकता। जिस विद्या (विज्ञान) के द्वारा ये अनुभव प्राप्त होते हैं, उसका नाम योग है। (वही पृ० ३७)

"क्या धर्म को भी स्वयं को उस बुद्धि के आविष्कारों द्वारा सत्य प्रमाणित करना हैं जिसकी सहायता से अन्य सभी विज्ञान अपने को सत्य सिद्ध करते हैं? बाह्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जिन अन्वेषण-पद्धतियों का प्रयोग होता है क्या उन्हें धर्म विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रयुक्त किया जा सकता है? मेरा विचार है कि ऐसा अवश्य होना चाहिए और मेरा अपना विश्वास भी है कि यह कार्य जितना शीघ्र हो उतना ही अच्छा। यदि कोई धर्म इन अन्वेषणों के द्वारा ध्वंसप्राप्त हो जाय तो वह सदा से निरर्थक धर्म था -कोरे अन्धविश्वास का, एवं वह जितनी जल्दी दूर हो जाये उतना ही अच्छा। ....सारा मैल धुल जरूर जायगा, पर इस अनुसन्धान के फलस्वरूप धर्म के शाश्वत् तत्त्व विजयी होकर निकल आयेंगे। यह केवल विज्ञान सम्मत ही नहीं होगा—कम से कम उतना ही वैज्ञानिक जितनी कि भौतिकी या रसायनशास्त्र की उपलब्धियाँ हैं, प्रत्युत और भी अधिक सशक्त हो उठेगा: क्योंकि भौतिक या रसायन शास्त्र के पास अपने सत्यों को सिद्ध करने का अन्तः साक्ष्य नहीं है, जो धर्म को उपलब्ध है। (वही, द्वितीय खंड, पृ० २७८)

स्वामी विवेकानन्द के उपर्युक्त कथनों की पुष्टि के लिए श्रीरामकृष्ण के ईश्वर विषयक "प्रयोगों" के प्रतिष्ठित दृष्टान्त को उद्धृत किया जाता है। विज्ञान की एक परिभाषा है: सार्वभौमिक प्रत्यक्षानुभूति जन्य सत्य जिनकी प्रयोगात्मक पुष्टि सभी के द्वारा की जा सके।" सत्य के स्वरूप से अवगत होने का उत्साह, वस्तुनिष्ठता, तथा ज्ञानार्जन एवं उसकी अभिव्यक्ति में यथातथ्यता विज्ञान के मूलभूत आधार हैं। धर्म की सत्यता के विषय में श्रीरामकृष्ण के प्रयोगों एवं कार्यपद्धति में इन सभी लक्षणों का निदर्शन हुआ है। जब उन्होंने पुजारी के रूप में काली की मूर्ति की उपासना प्रारंभ की तो एकाग्रता एवं आन्तरिकता से प्रार्थना करते हुए वे कहते थे: माँ क्या तुम केवल मृन्मयी हो या चिन्मयी भी। तात्पर्य यह कि वे अपने समक्ष उपस्थित मूर्ति के अन्तर्निहित सत्य को जानना चाहते थे, जैसा कि एक वैज्ञानिक करता है। वे यह भी प्रार्थना करते थे: 'माँ, तुमने रामप्रसाद और कमलाकान्त को दर्शन दिया, तब तुम मेरे सामने क्यों नहीं प्रकट होती? सत्य के सार्वभौमिक प्रमाण का यह एक प्रयास था, जिसकी अनुभूति आध्यात्मिक राज्य के पूर्ववर्ती वैज्ञानिकों अर्थात् सन्तों ने की थी। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व के विषय में प्रश्न पूछे जाने पर उन्होंने यही उत्तर दिया था: "जैसे मैं तुम्हें देखता हूँ, वैसे ही ईश्वर को देखता हूँ, बल्कि उससे भी स्पष्टतर रूप में। यदि तुम मेरे निर्देशों का पालन करो तो तुम भी देख सकते हो।" यह उत्तर यथातथ्यता के मापदंड की भी पूर्ति करता है क्योंकि इसमें ईश्वर के स्वरूप का स्पष्टतर रूप में वर्णन करने का प्रयत्न किया गया है।

श्रीरामकृष्ण के साधनाकाल में भैरवी ब्राह्मणी नामक एक महिला साधिका ने शास्त्रों के निर्देसानुसार उनसे तांत्रिक साधना कारवायी थी। इन साधनाओं में सफलता प्राप्त करने के बाद आगे चलकर श्रीरामकृष्ण ने तंत्रों में वर्णित साधन प्रणाली की सत्यता एवं प्रभावकारी शक्ति की पुष्टि की। बाद में शास्त्रज्ञ पंडितों एवं साधकों की एक सभा में श्रीरामकृष्ण ने आध्यात्मिक जगत् में किये गये अपने प्रयोगों के परिणामों को प्रस्तुत किया। इन शास्त्रविदों ने श्रीरामकृष्ण की अनुभूतियों की सत्यता की

पुष्टि की। यह मानो विद्वत् समाज के सामने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों के निष्कर्ष को प्रस्तुत करने के समान था।

(४)

स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रस्तुत धर्म का युक्तिसंगत बचाव और धर्म की वैज्ञानिकता के श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रस्तुत प्रयोगात्मक प्रमाण कुछ ऐसे कट्टर वैज्ञानिकों को प्रभावित नहीं कर पाते जिनकी विज्ञान में अन्ध श्रद्धा है। केवल धार्मिक लोग ही अन्ध विश्वासी नहीं होते। तथाकथित वैज्ञानिक भी संकीर्ण विचारधारा के हो सकते हैं और अपनी वैज्ञानिक अवधारणा के प्रति उनका एकपक्षीय, संकीर्ण दृष्टिकोण हो सकता है, जिसके कारण वे किसी भी अन्य स्रोत से प्राप्त सत्य को अस्वीकृत कर देते हैं। इन वैज्ञानिकों की मान्यता है कि विज्ञान एक के बाद एक धार्मिक सिद्धान्तों को असत्य सिद्ध करता जा रहा है, और एक दिन ऐसा आयेगा जब धर्म समग्र रूप में या पूरी तरह असत्य सिद्ध हो जायेगा। होवेल इस पूर्वानुमान के पक्ष में एक सशक्त तर्क प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि धर्म का आधार अतीन्द्रिय सत्य है। अब, हमारी समग्र वैज्ञानिक और अभियांत्रिक संस्कृति अदृश्य को दृश्य, अतिन्द्रिय को इन्द्रीय गम्य बनाने के लिये संघर्षरत है तथा रहस्यमय सत्ता के उन्मूलन में जी-जान से संलग्न है। इसका एकमात्र उद्देश्य धार्मिक आस्थाओं को विनष्ट करना है। इस द्वन्द्व को शान्त करने के लिए दार्शनिकगण धर्म की परिभाषा और कार्य क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के संशोधन प्रस्तुत करते जा रहे हैं। इसके फलस्वरूप एक समय ऐसा आयेगा कि जब धर्म कुछ अमूर्त अत्यन्त सूक्ष्म दार्शनिक या तात्त्विक सिद्धान्त एवं कुछ नैतिक सिद्धान्तों में पर्यवसित हो कर रह जायेगा जो सामान्य नागरिक की मानसिक पहुंच के बाहर होगा तथा जिसकी सामान्य जन के लिये कोई उपयोगिता नहीं रह जायेगी।

धर्म में दूसरे परिवर्तन की संभावना भी है, जिसके अनुसार धर्म अपनी प्रभुता को खो कर मानव जीवन को परिचालित करने वाली विभिन्न शक्तियों में से एक गौण एवं दुर्बल धारक के रूप में रह जायेगा। यह मानो तानाशाही की पूर्ण सत्ता से सीमित सत्ता और अन्त में प्रजातंत्र की सी व्यवस्था का होना होगा। तात्पर्य यह कि धर्म गौण और शक्ति हीन होकर समाज में बन्द रहेगा।

तब फिर धर्म द्वारा इतने दीर्घ काल तक प्रपूरित सामाजिक उपयोगिता का क्या होगा? विज्ञान के पुजारियों का कहना है कि यह कार्य वैज्ञानिक मानवतावाद द्वारा किया जायेगा। इनके अनुसार विज्ञान मानव को मात्र यंत्र ही प्रदान नहीं करता, बल्कि वह एक सत्यनिष्ठ जीवन दर्शन एवं लक्ष्य भी प्रदान करता है। सत्यनिष्ठा और मानव कल्याण की कामना विशुद्ध विज्ञान के अभिन्न अंग हैं। वैज्ञानिक मानसिकता का अर्थ है तथ्यों का वर्गीकरण करने, उनके पूर्वापर क्रम को समझने, तथा उनके तुलनात्मक महत्व को जानने की क्षमता का होना, व्यक्तिगत अभिरूचि को त्याग कर निष्पक्ष रूप से एक सत्य निष्कर्ष पर पहुँचने की क्षमता का होना। इस प्रकार की मानसिकता "वैज्ञानिक मनोवृत्ति" कहलाती है, तथा इन वैज्ञानिकों के मतानुसार यह मानव के विकास एवं कल्याण के लिए सभी प्रकार से पर्याप्त है। तात्पर्य यह है कि मानव के विकास और कल्याण के लिए अतीन्द्रिय सत्यों में आस्था पर आधारित धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह कार्य वैज्ञानिक सत्यों पर आधारित वैज्ञानिक मनोवृत्ति के द्वारा किया जा सकता है।

इन कट्टर वैज्ञानिकों से भिन्न एक उदारवादी वैज्ञानिकों का भी समूह है जिन्होंने समय समय पर विज्ञान और धर्म, दोनों को समान एवं समुचित आदर व स्थान प्रदान करने का प्रयत्न किया है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि धर्म समाज में स्थिरता एवं व्यक्ति को चारित्रिक संहति प्रदान करता रहा है और विज्ञान के प्रहारों के फलस्वरूप धर्म के इन लाभदायक परिणामों को भी क्षति पहुंची है। अतः जब इन वैज्ञानिकों ने देखा कि धर्म के अन्ध विश्वासों के नारा का साथ ही साथ विज्ञान

धर्म के कल्याणकारी पक्ष को भी नष्ट कर रहा है, तो वे इन दोनों में तालमेल बैठाने के लिये सचेष्ट हुए। दृष्टान्त स्वरूप, न्यूटन ने विज्ञान को धार्मिक पृष्ठभूमि से देखने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि भगवान एक सुसंबद्ध और सुनियोजित विश्व का निर्माण करता है और विज्ञान द्वारा हम उन नियमों को जानने का प्रयत्न करते हैं जिनकी सहायता से ईश्वर इस विश्व का नियंत्रण करता है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री, वेबर ने विज्ञान और धर्म को भिन्न कार्यक्षेत्र प्रदान किया। उनके मतानुसार विज्ञान मानव जीवन की घटनाओं के कार्य-कारण संबंध का अनुसन्धान करता है जबकि धर्म मानव जीवन को अर्थ प्रदान करने के प्रश्न का समाधान जुटाता है। एक अन्य वैज्ञानिक सुब्बाराव का कथन है कि विज्ञान मानव की उम्र को लंबी कर सकता है, लेकिन उसके जीवन को गहराई धर्म प्रदान करता है। दूसरे दार्शनिकों का कहना है कि विज्ञान युक्ति पर आधारित है, जबकि धर्म भावनाओं से सम्बन्धित है। विज्ञान मस्तिस्क की जिज्ञासा को शान्त करता है, तो धर्म हृदय की प्यास बुझाता है। धर्म आन्तर्जगत का अनुसन्धान कर अन्तः अनुभूति प्रदान करता है, जब कि विज्ञान बाह्य जगत् का अध्ययन करता है और इन्द्रीयानुभव पर आधारित है।

कुछ चिन्तकों का मत है कि धर्म और विज्ञान का झगड़ा कुछ ऊपरी बातों, गौण पक्षों को लेकर है। विज्ञान अन्धविश्वासों, कट्टरता, युक्तिहीन रूढ़िवादी सिद्धान्तों का विरोधी है, सच्चे धर्म का नहीं। धर्म की सामाजिक उपयोगिता के विरुद्ध विज्ञान का कोई झगड़ा नहीं है। विज्ञान को प्रोत्साहित करने पर अन्ततोगत्वा धर्म भी लाभान्वित होगा। यह संभव है कि कोई एकाध धर्म विशेष विज्ञान के द्वारा निष्ट प्राय हो जाये पर नये धर्म और अर्ध-धर्मों का उद्भव होगा। कुछ लोगों का तो कथन है कि धर्म एक उच्चतर विज्ञान हो या न हो पर विज्ञान एक अच्छा धर्म है। विज्ञान ही धर्म का स्थान ले सकता है।

(५)

पुनर्मूल्यांकन का आधुनिक काल :—

इस ऐतिहासिक समीक्षा में अब हम इस आधुनिक काल में आते हैं जिसकी विशेषता यह है कि इसमें विज्ञान और धर्म दोनों को एक दूसरे के प्रति विरोध की तीव्रता में कमी आ गयी। विज्ञान के पुजारियों की भविष्यवाणी के विपरीत, धर्म का नाश तो नहीं हुआ है लेकिन उसे आधुनिक वर्तमान युग के अनुरूप अपने को परिवर्तित करने के लिये बाध्य होना पड़ा है। धर्म के नये नये रूप वर्तमान काल में सामने आ रहे हैं। सर्वत्र विश्व में छोटे छोटे नव-संप्रदाय और नये धार्मिक या अर्ध-धार्मिक आन्दोलनों का उद्भव हो रहा है, जो वर्तमान युग की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

जैसा कि संकेत दिया गया है, मेक्स वेबर नामक प्रसिद्ध समाज शास्त्री के अनुसार धर्म मानव जीवन को अर्थ प्रदान करता है। सामाजिक संदर्भ में, मानव जीवन की मूलभूत समस्याओं के लिए मानव समाज जिन विश्वासों एवं क्रिया अनुष्ठानों का अवलंबन ग्रहण करते हैं, वही धर्म कहलाता है। इन आस्थाओं एवं क्रिया कलापों के माध्यम से मानव निराशा, मृत्यु एवं प्रकृति की शक्तियों के सामने हार न मानने के अपने निश्चय को व्यक्त करता है। विज्ञान इतनी महती सफलता के बाद भी जीवन का अर्थ अथवा मृत्यु का उपाय मानव को बता नहीं सका है। अतः जब तक मृत्यु, जरा, व्याधि, निराशा एवं असहायता बनी रहेंगी, तबतक मानव को धर्म की आवश्यकता भी बनी रहेगी। चिर जीवन व शाश्वत सुख की प्यास कभी भी भौतिक विज्ञानों की सहायता से बुझाई नहीं जा सकती। वह केवल धर्म ही शान्त कर सकता है। हाँ, धर्म के स्वरूप भिन्न भिन्न हो सकते हैं। तीक्ष्ण बुद्धि लोग एक युक्तिवादी धर्म को स्वीकार करेंगे, जबकि अधिक मूढ़ जन विश्वास परक धर्म को।

दूसरी ओर विज्ञान भी अपनी सीमाओं को पहचानने लगा है। वस्तुनिष्ठता विज्ञान की आधार शिला है,

और इसका दार्शनिक आधार है कार्टीय द्वि-भाजन (Carterian Dicotomy) जिसके अनुसार जगत् की समस्त वस्तुएं विषय और विषयी, भोग्य और भोक्ता, ज्ञाता और ज्ञानी इन दो श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं। इस प्रकार के दृष्टिकोण के अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिणाम होते हैं। स्थूल अर्थों में इसका निष्कर्ष यह है कि मानव, व्यक्ति और समाज के रूप में भोक्ता है और जगत् प्रकृति तथा मानवेतर प्राणि—उसके भोग्य—भोग के उपादान हैं। इस दृष्टिकोण ने एक ओर जहां विज्ञान ने महती प्रगति की है, दूसरी ओर इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप मानव प्रकृति का एक क्रूर शोषक बन गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि विज्ञान तथा उसकी कन्या, तकनीक की सहायता से मानव प्रकृति पर असंख्य अत्याचार कर रहा है। और परिणाम स्वरूप विश्व एक पर्यावरण प्रदूषण के भयंकर त्रासदी के सम्मुखीन हो रहा है। मानव ने अणुबमों के भयानक परिणाम तो देखें ही हैं। इस तरह विज्ञान के लाभ की तुलना में हानियां ही अधिक हुई हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। इस बात को पाश्चात्य वैज्ञानिक व दार्शनिक भी स्वीकार करने लगे हैं। 'दि ताओ आफ फिजिक्स" नामक प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक काप्रा ने इस पुस्तक के प्रथम अध्याय का शीर्षक "आधुनिक विज्ञान-हृदयवान एक पथ" दिया है, जो अपने आप में महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में वे यह स्वीकार करते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक लिखने का उनका उद्देश्य विज्ञान की बिगड़ती छवि को सुधारना है। विज्ञान ने मानव को सुविधाएं भले ही प्रदान की हों, पर उसने मानव के लिए समस्याएं भी कम पैदा नहीं की हैं। उसने मानव को अधिक सुखी नहीं बनाया है।

विशुद्ध विज्ञान जो ज्ञान एवं सत्य की खोज में लगा है, उसने भी अपनी सीमाएं जान ली हैं। वैज्ञानिक अब इस निष्कर्ष पर पहुंच रहे हैं कि विज्ञान की विधि के द्वारा चरम सत्य एवं जगत् के मौलिक स्वरूप का पता नहीं लगाया जा सकता। इस दिशा में जिन तीन सिद्धान्तों का प्रभाव आधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा पर सबसे अधिक पड़ा है, वे हैं आईन्स्टीन का सापेक्षवाद, (Theory of relativity) प्लेंक का क्वान्टम सिद्धान्त और हीसनबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त। भौतिक शास्त्र को यह आशा थी कि एक न एक दिन वह जगत् का निर्माण करने वाले अन्तिम व सबसे छोटे कण का, तथा उसके स्वरूप का पता लगा लेगा और तब जगत् के रहस्य का संपूर्ण उद्घाटन हो जायेगा। लेकिन उपरोक्त सिद्धान्तों ने यह बताया है कि इस प्रकार के कोई अणु हैं ही नहीं। वहां केवल शक्ति व ऊर्जा के समूह हैं जो बिना किसी नियम का पालन किये एक स्थान से दूसरे स्थान को तरंगायित होते रहते हैं। वे शुद्ध पृथक इकाईयां भी नहीं हैं, बल्कि वे एक दूसरे से जाल की तरह बंधे हुए हैं कार्य-कारण का नियम अणु से भी छोटे अणु-परमाणु के क्षेत्र में लागू नहीं होता। यही नहीं समग्र वैज्ञानिक ज्ञान केवल सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं। इसके अतिरिक्त एक और बात जानने में आयी है, और वह यह है कि किसी भी घटना अथवा वस्तु का अध्ययन करते समय, विशेषकर अणु-परमाणु के क्षेत्र में अध्ययन-कर्त्ता वैज्ञानिक की चेतना अध्ययनक्रिया को प्रमाणित करती है। अतः अध्ययनकर्ता एवं उसके ज्ञान का वस्तु के बीच ज्ञाता-ज्ञेय का स्पष्ट अन्तर करना कठिन है। तात्पर्य यह है कि जगत् को इन दो इकाइयों में विभक्त करने के बदले एक ही सक्रिय इकाई के रूप में देखना होगा।

आधुनिक भौतिक शास्त्र के ये निष्कर्ष इतने चौंकाने वाले, इतने अप्रत्याशित हैं कि उन्होंने विज्ञान की नींव ही हिला दी है। परिणाम स्वरूप बहुत से विश्वस्तर के गण्यमान्य वैज्ञानिक दार्शनिकों एवं धर्माचार्य अथवा साधकों की सी भाषा बोलने लगे हैं। विज्ञान ने इन वैज्ञानिकों को दर्शन, धर्म और साधना की दहलीज पर लाकर खड़ा कर दिया है। जहां विज्ञान का अन्त होता है, वहां से धर्म का प्रारंभ होता है। पुरातन भारतीय चिन्तन के इस निष्कर्ष को आज आधुनिक वैज्ञानिक स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं। ★

स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में

अनुवादक स्वामी विदेहात्मानन्द

(१३) ब्रह्मबान्धव उपाध्याय :

कुछ दिनों के लिए भ्रमणार्थ मैं बोलपुर आश्रम गया था। लौटते समय मैं ज्योंही हावड़ा स्टेशन पर पहुंचा, त्योंही किसी ने कहा— कल विवेकानन्द ने अपनी नरलीला का संवरण कर लिया। सच कहता हूँ सुनते ही मेरे सीने में मानो छुरी भिद गयी। वेदना का ज्वार थोड़ा कम होने पर मैंने सोचा— विवेकानन्द का काम अब कैसे चलेगा? फिर मन में आया—क्यों? उनके अनेक सुयोग्य गुरुभाई जो हैं, वे लोग चलाएंगे। तो भी प्रेरणा हुई—मुझमें जो थोड़ी बहुत शक्ति है, उसे काम में लगाऊँ, विवेकानन्द की विश्व-विजय का कार्य आगे बढ़ाने का प्रयास करूँ। उसी क्षण मैंने यूरोप जाने का निश्चय कर लिया। मैंने सपने में भी न सोचा था कि कभी यूरोप देखना होगा। पर उसी हावड़ा स्टेशन पर ही मैंने संकल्प कर लिया कि मैं यूरोप जाकर वहाँ वेदान्त की प्रतिष्ठा करूँगा। तब मेरी समझ में आया कि विवेकानन्द कौन हैं! जिनकी प्रेरणाशक्ति मुझ जैसे क्षुद्र व्यक्ति को समुद्र पार ले जा सकती है, वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हो सकते। इसके कुछ ही दिनों बाद मैं केवल सत्ताइस रुपये लेकर कलकत्ता नगरी से विदा हुआ और यूरोप की यात्रा पर चल पड़ा। अन्ततः यूरोप पहुँचकर मैंने ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज में वेदान्त पर व्याख्यान दिए। वहाँ बड़े-बड़े प्राध्यापकों ने मेरे भाषण सुने और मुझे वचन दिया कि वे अपने यहाँ हिन्दू प्राध्यापकों की नियुक्ति कर वेदान्तशास्त्र के शिक्षण की व्यवस्था करेंगे। उन प्राध्यापकों ने मुझे जो पत्र लिखे, उन्हें मैंने प्रकाशित नहीं कराया है। उनके प्रकाशित होने पर पता चलेगा कि वहाँ वेदान्त का कितना प्रभावी प्रचार हुआ था। मैं एक साधारण सा आदमी हूँ। मेरे द्वारा जो यह इतना बड़ा कार्य हो गया, वह मुझे एक स्वप्न जैसा प्रतीत होता है। यह सब विवेकानन्द की प्रेरणा-शक्ति से ही हो सका है, मानो असम्भव सम्भव हो गया। इसीलिए मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि विवेकानन्द कौन हैं? विवेकानन्द जिस महान कार्य का विस्तार कर गये हैं, उस पर विचार करने से उनके महत्व का ओर-छोर नहीं मिलता।

एक बार कलकत्ता के हेंदुआ तालाब के किनारे मेरी विवेकानन्द से भेंट हुई थी। मैंने कहा—'भाई! चुपचाप क्यों बैठे हो? चलो, एक बार कलकत्ता शहर में वेदान्त का शोर मचाएँ। मैं सब व्यवस्था कर दूँगा, तुम बस एक बार मंच पर आ जाना।' विवेकानन्द ने कातर स्वर में कहा—'भवानी भाई! अब मैं बचूँगा नहीं।* (मेरी इच्छा है कि) मैं अपने मठ का निर्माण पूरा करके, कार्य की सुव्यवस्था करके जाऊँ। मैं इसी कार्य में व्यस्त हूँ, मेरे पास समय नहीं है।' उसी दिन उनका करुणा-कलित चित्त देखकर मैं समझ गया कि इस व्यक्ति का हृदय वेदनामय-व्यथा से परिपूर्ण है। पर वेदना किसके लिए, व्यथा किसके लिए? देश के लिए। आर्यज्ञान, आर्य सभ्यता सब नष्ट-भ्रष्ट, विध्वंश होता जा रहा है; अन्य अनार्य तत्त्व उस सूक्ष्म, उदार, आर्य तत्व को पराभूत किए जा रहे हैं और तुम हो कि जागते ही नहीं, व्यथा भी नहीं होती तुम्हें। विवेकानन्द के हृदय में इसकी वेदनामय प्रतिक्रिया हुई थी। वह व्यथा, वह प्रतिक्रिया इतनी गम्भीर थी कि उसने अमेरिका और यूरोप में चेतना जगा दी। उसी व्यथा की बात सोचता

*यह उनके तिरोभाव के ठीक छः महीने पूर्व की बात है।

हूँ, उसी वेदना पर चिन्तन करता हूँ और स्वयं से पूछता हूँ - विवेकानन्द कौन थे ? देश के लिए व्यथा क्या कभी मूर्तिमान हो सकती है ? यदि हो सकती हो तो विवेकानन्द को समझा जा सकता है।

स्वामीजी ! मैं तुम्हारे यौवन का मित्र हूँ। तुम्हारे साथ मैंने कितना आमोद-प्रमोद किया है, वनभोज किया है, बातचीत की है। तब मैं भला कहाँ जानता था कि तुम्हारे हृदय में भारत के लिए पीड़ा का ज्वालामुखी सुलग रहा है ! आज मैं भी अपनी क्षुद्र शक्ति के साथ तुम्हारे ही व्रत को पूरा करने में लगा हूँ।.....इस घोर संग्राम में जब मैं क्षत विक्षत होकर गिर पड़ता हूँ, अवसाद आकर हृदय को आच्छन्न कर लेता है, तब मैं तुम्हारे द्वारा प्रदर्शित आदर्श की ओर देखता हूँ, तुम्हारे सिंहविक्रम की बात सोचता हूँ, तुम्हारे गहन वेदना का स्मरण करता हूँ। इसके साथ ही मेरा सारा विषाद चला जाता है और न जाने कहाँ से दिव्यालोक, दिव्य-शक्ति आकर मेरे मन-प्राण को परिपूर्ण कर देता है।

*

११ सितम्बर, शिकागो दिवस पर विशेष

भारतीय अध्यात्म के सूर्य : स्वामी विवेकानन्द

सुश्री स्वर्ण किरण
जमशेदपुर

कभी-कभी समय की दीर्घ अवधि के बाद एक ऐसा मनुष्य हमारे इस ग्रह में आ पहुँचता है, जो असंदिग्ध रूप में किसी दूसरे मंडल से आया हुआ एक पर्यटक होता है जो उस अति दूरवर्ती क्षेत्र की, जहाँ से आया है, महिमा शक्ति और दीप्त का कुछ अंश इस दु:खपूर्ण संसार में लाता है। वह मनुष्यों के बीच विचरता है लेकिन वह इस मर्त्यभूमि का नहीं है। वह है एक तीर्थयात्री एक अजनबी—वह महाकाल के अनन्त समय में केवल एक रात के लिए ही यहाँ ठहरता है।

ऐसे ही एक मनुष्य को समग्र विश्व ने देखा, उसकी वाणी सुनी और उसके प्रति श्रद्धा अर्पित की। श्री राम कृष्ण के आध्यात्मिक पुत्र अथवा शिष्य स्वामी विवेकानन्द के चरणों में सबने अपनी आत्मा की अनुरक्ति निवेदित की।

आधुनिक युग के विश्वव्यापी विघटनशील वातावरण में सनातन धर्म को आवश्यकता थी एक ऐसी चट्टान की, जहाँ वह लंगर डाल सके, एक ऐसी प्रभावित वाणी की जिसमें वह स्वयं को पहचान सके। ऐसी ही स्थिति में शिकागो धर्म सम्मेलन के मंचपर उदित हुआ विवेकानन्द रूपी सूर्य। ११ सितम्बर १८९३ ई. सोमवार, धर्मजगत के इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगा क्योंकि उसी दिन पूर्व और पश्चिम का मिलन हुआ था। उसी दिन समग्र विश्व में विश्वबन्धुत्व का सूत्रपात हुआ था और उसी दिन प्राचीन भारत के वेदान्त धर्म ने स्वामी विवेकानन्द को अपना यन्त्र बनाकर महान धर्म सम्मेलन में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था। शिकागो धर्म सभा में स्वामी विवेकानन्द के वक्तव्य के पूर्व जितने भी वक्ता थे उन्होंने प्राय: अपने धर्मों के भावादर्शों की पराकाष्ठा का विश्लेषण किया। परन्तु स्वामी जी का यह उद्गार कि हम सहिष्णु हैं तथा हम अन्य धर्मों, मुसलमान के साथ मस्जिद में नमाज पढ़कर, पारसियों की अग्नि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रास के सम्मुख नत

मस्तक होकर एकात्म हो जाते हैं। स्वामी जी का यह उद्गार मानो सनातन धर्म का वह दर्पण है जिसमें सभी धर्म अपने प्रतिबिम्ब देख सकते हैं तभी तो उन्होंने वैदिक आह्वान किया है—अमृतपुत्रो सुनो, उच्चतर लोको में रहने वाले तुम भी सुनो मैं उस पुराण पुरुष को जानता हूं जो समस्त अंधकार, समस्त भ्रांति से परे है। और मैं यह भी जानता हूं कि बिना उसे जाने तुम्हारा कुछ ना होगा। स्वामीजी के वक्तव्य में भगवान रामकृष्ण के समस्त आदर्श थे। वे धर्मपरिवर्तन, धर्मों की अच्छाई बुराई एवं मात्र धर्म ग्राह्यता को स्वीकार नहीं करते थे।

स्वाभाव रुचि परिवेश देश काल के आलोक में मतान्तर होना नानाभाव आदर्शों एवं, धर्म की आसक्ति स्वाभाविक है। परन्तु उनका आह्वान था समस्त मानव जाति अपने धर्म आचरण से उस पुराण पुरुष को प्राप्त करे। अपने धर्म को पालते हुए अन्य धर्म की अच्छाइयों को स्वीकार करना चाहिए। उन्होंने कह छोड़ा—चर्च में जन्म लेना श्रेयस्कर है परन्तु चर्च में मर जाना निन्दनीय है।

अमरीका की बहनों एवं भाइयों के रूप में अपना पहला सम्बोधन करनेवाले इस तरुण संन्यासी का धर्म सम्मेलन ने हार्दिक अभिनन्दन किया। एक ही दिन में पूरे अमेरिका में उनकी कीर्ति फैल गयी। शिकागो महानगरी की जनता स्वामीजी के चरणों में लोट पड़ी। उस दिन से अमेरिका निवासी तथा वहाँ के समाचार पत्र उनकी प्रशंसा करते न अघाते। उस वीर संन्यासी के रंगीन चित्र शिकागो में लोगों के मन में श्रद्धा और विस्मय का उद्रेक करते थे। अमरीकन समाचार पत्रों ने विवेकानन्द को सम्मेलन का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति घोषित किया और कहा—'उनका व्याख्यान सुनने के बाद आज हमें यह विशेष रूप से अनुभव हुआ है कि भारत जैसे देश में ईसाई धर्म प्रचारक भेजना कितनी बेवकूफी की बात है।

शिकागो धर्म सभा में जब स्वामीजी ने अपना भाषण आरम्भ किया तो उनका विषय था हिन्दुओं के प्राचीन धार्मिक विचार। पर जब उनका भाषण समाप्त हुआ तो आधुनिक सनातन धर्म की सृष्टि हो चुकी थी। उनके भीतर सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपनी भावधारा का महत्व आंकने की क्षमता मिली। भारत की धर्म चेतना ने उनके द्वारा पश्चिम में अपने आपको प्रकाशित किया। रोमां रोलां ने इस जागरण की ओरइंगित करते हुए लिखा—सर्वप्रथम यही से भारत की उन्नति शुरु हुई और उस दिन से इस दीर्घकाय कुम्भकर्ण की नींद टूटने लगी।

अज्ञात और अख्यात स्वामी विवेकानन्द विश्वबन्धु हुए। जिस हिन्दू धर्म को मूर्तिपूजक कहा गया था जिसे विश्व धर्म सम्मेलन में निमंत्रण भी नहीं भेजा गया था उसी हिन्दू धर्म के बिना बुलाये प्रतिनिधि के रूप में धर्म सम्मेलन में उपस्थित हो विवेकानन्द ने सनातन वैदिक धर्म के लिए सबसे उच्चसिंहासन पर अधिकार जमा लिया। उन्हें साइक्लोनिक हिन्दू मौंक (तूफानी हिन्दूसंन्यासी) और लाइटनिंग ओरेटर (विद्युत वक्ता) के नाम दिये गये पर इस सम्मान को विवेकानन्द ने अत्यंत विनयपूर्वक ही ग्रहण किया। वे अपने आपको सन्देश-वाहक मात्र कहा करते थे। वे श्री रामकृष्ण के सन्देश-वाहक दूत थे। धर्म सभा के समाप्त होते ही स्वामी जी को कई स्थानों से व्याख्यान के लिए आमंत्रण आने लगे। अमेरिका की व्याख्यान कम्पनी ने इस जनप्रिय वक्ता के समक्ष संयुक्त राज्य के विभिन्न स्थानों पर व्याख्यान देने का प्रस्ताव रखा। विद्युत गति से एक नगर से दूसरे नगर की यात्रा करते हुये कभी कभी तो वे सप्ताह में तेरह चौदह व्याख्यान तक दे देते थे। अब तक अमेरिका के अनेक प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी लोग उनके अनुयायी और शिष्य हो गये। १८९४ ई० फरवरी में उन्होंने न्यूयार्क में राजयोग और ज्ञानयोग पर एक व्याख्यान माला आरम्भ किया। बाद में व्याख्यान पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए। इनके ग्रन्थों को पढ़कर अमेरिका के विख्यात दार्शनिक विलियम जेम्स और बाद में रूस के प्रसिद्ध टालस्टाय बड़े मुग्ध हुए थे।

सारे यूरोपवासी उनके ओजस्वी वाणी की वर्षा में भींग चुके थे। पश्चिम में विजय अभियान चलाते समय स्वामी जी अपने भारतवर्ष को नहीं भूले थे। भारत की स्मृति उनके हृदय में घर किये हुए थी। तभी तो उन्होंने पाश्चात्य देशों में रहते समय ही भारत वर्ष के विभिन्न स्थानों पर केन्द्र एवं शाखाएँ बनाकर जनता में राष्ट्रीयता का बोध जगाने के लिए अपने शिष्यों और गुरु भाइयों का आह्वान किया था। उन्होंने कहा था आगे पचास वर्षों के लिए अपने मन से बाकी सभी देवी देवताओं को विदा कर देना होगा। हमारा देश ही हमारा एक-मात्र देवता है सबसे पहले हमें अपने देशवासियों की पूजा करनी होगी।

१९ दिसम्बर १८९६ ई० को लन्दन से रवाना होकर स्वामी जी डोवर केलाइस और मान्दसेविस होते हुए इटली पहुचे। रोम ने उन्हें मोहित कर लिया था। स्वामीजी का सारा मन भारत के चिन्तन में डूबा हुआ था। पश्चिम से क्या वे खाली हाथ लौट रहे थे? नहीं, बहुत कुछ जोड़कर वे जा रहे हैं सब कुछ भारत की उन्नति में लगाएगें। पश्चिम की संगठन शक्ति, विज्ञान, कर्मठता, अदम्य उत्साह—ये भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

किसी विशाल वट वृक्ष के नीचे खड़े होकर जब हम उसके विस्तृत आयतन की ओर विस्मय-मुग्ध हो देखते हैं तब क्या हम सोच सकते हैं कि यह विराट वट वृक्ष एक दिन सरसों जैसे छोटे बीज के भीतर छिपा था। उसी प्रकार १२ जनवरी १८६३ पौष कृष्ण सप्तमी तिथि के दिन कलकत्ते के सिमला मुहल्ले में विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी को प्रथम पुत्र के रूप में जो शिशु जन्मा उसे देखकर उस समय कौन सोच पाया होगा कि भविष्य में उसके मात्र उनचालिस वर्ष के जीवन में एक ऐसी आश्चर्यजनक प्रतिभा—एक महान शक्ति की मर्यादा के भीतर रहेगी जो समय की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पले, भिन्न-भिन्न नर नारियों के प्राणों में मानवता की शाश्वत महिमा सत्य न्याय मैत्री की सजीव प्रेरणा एवं निर्भय हो लोककल्याण साधन करने की स्फूर्ति जगाती रहेगी। कालांतर में स्वामी जी रामकृष्ण के शिष्य बने तथा उनके आह्वान को लेकर चल पड़े—समग्र मानवजाति को निद्रा से जागने। स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण की वाणी के मूर्त रूप थे।

सद्य प्रकाशित नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? परलोक में जीव का अवस्थान किस किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ 'मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८: मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक:

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक—डा० अशीष बनर्जी

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भवबन्धविमुक्तये ।
स्वैरेव यत्नः कर्तव्यो रोगादाविव पण्डितैः । ६६

रोग से मुक्ति के लिए जिस प्रकार औषधि सेवनादि करना पड़ता है, उसी प्रकार भवबंधन से मुक्तिलाभ हेतु, विचारशील व्यक्ति को आवश्यक साधन समूह का सहारा लेना कर्तव्य है । ६६

यत्त्वयाद्य कृतः प्रश्नो वरीयाञ्छास्त्रविन्मतः ।
सूत्र प्रायो निगूढ़ार्थो ज्ञातव्यश्च मुमुक्षुभिः ।। ६७

तुमने आज जो प्रश्न किये, वे अति उत्तम है। इस प्रकार के प्रश्न शास्त्रज्ञ व्यक्तियों द्वारा श्रेष्ठ माने गये हैं, जो बहुत संक्षिप्त परन्तु गम्भीर अर्थयुक्त एवं मुमुक्षु व्यक्तियों के जानने योग्य है । ६७

आत्म तत्व को जानने के लिए नचिकेता के द्वारा अतिशय आग्रह करने पर यमराज ने प्रसन्न होकर नचिकेता से कहा था, "त्वादृग् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा"—तुम्हारे जैसा ही जिज्ञासु हमलोगों के निकट आये ।" क ९/२/९

उपयुक्त शिष्य मिलने पर गुरु आनन्द सहित शिक्षा दान में प्रवृत होते हैं ।

श्रृणुष्वावहितो विद्वन्यन्मया समुदीर्यते ।
तदेतच्छ्रवणात्सद्यो भवबन्धाद्विमोक्ष्यसे ।। ६८

हे प्रिय शिष्य, तुम्हें जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान पूर्वक सुनो । इसको सुनने से भविष्य में तुम संसार बंधन से मुक्त हो जाओगे । ६८

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते
वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु ।
ततः शमश्चापि दमस्तितिक्षा
न्यासः प्रसक्ताखिल कर्मणां मृशम् ।। ६९

अनित्य वस्तुओं में तीव्र वैराग्य मोक्ष लाभ का मुख्य कारण बताया गया है । तत् पश्चात मोक्षलाभ के अन्यान्य सहायक हैं—शम, दम, तितिक्षा एवं श्रुति में बताये गये कर्मों का पूर्ण रूप से त्याग । ६९

श्रुति में बताये गये सकाम कर्मों का त्याग करना होगा ।

ततः श्रुतिस्तन्मननं सतत्त्व—
ध्यानं चिरं नित्यनिरन्तरं मुनेः ।
ततोऽविकल्पं परमेत्य विद्वा—
निहैव निर्वाणसुखं समृच्छति ।। ७०

(साधन चतुष्टय सम्पन्न साधक का साधन क्रम इस प्रकार होता है)—पहले गुरु से आत्मा का स्वरूप एवं महावाक्य श्रवण, तत्पश्चात श्रुति वाक्य का मनन, उसके बाद चिरकाल तक नित्य निरन्तर आत्म स्वरूप का ध्यान । इन सब अनुष्ठानों के फलस्वरूप विचारशील साधक विकल्प रहित आत्मस्वरूप को प्राप्त होकर इस जीवन में ही निर्वाण सुख लाभ करता है ।

'अविकल्पकं परमम्' इन दो पदों का अर्थ, 'निर्विकल्प समाधि' भी हो सकता है । निर्विकल्प-समाधि में विषय विषयी का ज्ञान मूल से चला जाता है ।

यद्बोद्धव्यं तवेदानीमात्कानात्मविवेचनम् ।
तदुच्यते मया सम्यक् श्रुत्वात्मन्यवधारय ।।७१

जो पार्थक्य आत्मा और अनात्मा के मध्य है उसे तुम्हें जानना आवश्यक है, वह मैं समझाता हूँ । उसे भलि भाँति सुनकर अपने मन में अच्छी तरह से समझ लो ।

मज्जास्थिमेदः पल रक्त चर्म
त्वगाड़्यैर्धातुभिरेभिरेभिरन्वितम् ।
पादोरुवक्षोभुजपृष्ठ मस्तकै—
रङ्गैरुपाङ्गैरुपयुक्तमेतत् ।। ७२

मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त, चर्म और त्वचा इन धातुओं द्वारा बने हुए एवं चरण, जंघा, वक्षःस्थल, हाथ, पीठ और मस्तक आदि अंग और उपांगो से युक्त यह शरीर है।

भ्रमवश अनात्म वस्तु को आत्मा समझने के कारण जीव को इतना दुःख झेलना पड़ता है। अनात्म वस्तु को जाने बिना बंधन का स्वरूप, बंधन का कारण एवं बंधन के आश्रय को समझना दुस्कर है। और बंधन का ज्ञान न होने पर बंधन से निवृत्ति का फल मोक्ष के स्वरूप को समझना सम्भव नहीं है। इसी कारण गुरुदेव ने सर्वप्रथम अनात्मा वस्तु का वर्णन प्रारम्भ किया।

अहं ममेति प्रथितं शरीरं
मोहास्पदं स्थूलमितीर्यते बुधैः।
नभोनभस्वद्दहनाम्बुभूमयः
सूक्ष्माणि भूतानि भवन्ति तानि ॥ ७३

'मैं और मेरा' रूप से प्रसिद्ध मोह के आश्रय रूप इस देह को ज्ञानीजन 'स्थूल शरीर' कहते हैं। (इस स्थूल शरीर में) आकाश, वायु, अग्नि, जल और मृतिका ये पांच सूक्ष्म भूत है।

मनुष्य के स्थूल शरीर में 'मैं ब्राह्मण' 'मैं गौरवर्ण' 'मैं स्थूल' इस प्रकार 'मैं'—ज्ञान एवं 'मेरा हाथ' 'मेरा' ज्ञान सदैव हो रहा है।

परस्परांशैर्मिलितानि भूत्वा
स्थूलानि च स्थूलशरीरहेतव।
मात्रास्तदीया विषया भवन्ति
शब्दादयः पंच सुखाय भोक्तु ॥ ७४

[पंचीकरण के नियमानुसार] यह सूक्ष्मभूत समूह परस्पर मिलकर स्थूल शरीर की उत्पत्ति का कारण पांच स्थूलभूत रूप में परिणित होते हैं। भोक्ता जीव को सुख प्रदान करने के लिए, पंच सूक्ष्मभूत के गुण समूह, शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध यह पांच विषयों का रूप ग्रहण करते है।

पंचीकरण=किसी सूक्ष्मभूत के आधे अंश के साथ बचे हुए चार सूक्ष्मभूत में प्रत्येक के १/८ अंश मिलाने पर जो सूक्ष्मभूत का आधा भाग लिया गया है उस नाम के स्थूलभूत में परिणित होता है। उदाहरण स्वरूप, सूक्ष्म (मृतिका $\frac{1}{2}$+जल १/८+अग्नि १/८+वायु १/८+आकाश १/८)=स्थूल मृतिका। वेदान्त शास्त्र में इसी को पंचीकरण कहते हैं।

य एषु मूढा विषयेषु बद्धा
रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन।
आयान्ति निर्हान्त्यध ऊर्ध्वमुच्चैः
स्वकर्मदूतेन जवेन नीताः ॥ ७५

जो मुढ़ व्यक्ति तीव्र आसक्ति के वश होकर विषय भोग में डूबे रहते हैं, वे अपने कर्मफल द्वारा प्रेरित होकर कभी तो पशु, तिर्यक आदि जीव योनि में जन्म लेते हैं तो कभी स्वर्गादि लोकों में सुख भोग करते हैं। (इस प्रकार वे जन्म मृत्यु रूप संसार दुःख भोग करते रहते हैं)।

शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च
पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः।
कुरङ्गमातङ्गमीन—भृङ्गा
नरः पञ्चभिरञ्चितः किम् ॥ ७६

हरिण, हाथी, पतङ्ग, मछली और भौंरा—यह पांच प्राणी, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध इन पाँच गुणों में अपने अपने विशेष प्रिय किसी एक गुण में आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। फिर इन पाँचों गुणों के वशीभूत मनुष्य की क्या दुर्दशा होगी ?

हरिण को पकड़ने के लिए व्याध वंशी की ध्वनि करता है। वंशी की मधुर तान से आकृष्ट हो हरिण व्याध के निकट आकर फँस जाता है। हाथी पकड़ने के लिए शिकारी खेदा (लकड़ी का मजबूत कटघरा) बनाते हैं। इस कटघरे में प्रवेश हेतु केवल एक दरवाजा होता है। कटघरे के निकट एक प्रशिक्षित हथिनी छोड़ दी जाती है। जंगली हाथी कटघरे के निकट आते

ही प्रशिक्षित हथिनी उसके सूंड़ से अपने सूंड़ को लपेट कर उसे स्पर्श सुख देती है। इस स्पर्श सुख के लोभ में जंगली हाथी, हथिनी के साथ धीरे धीरे कटघरे में प्रवेश कर फँस जाता है।

पतंग अग्नि के रूप से मुग्ध हो उसमें कूद पड़ती है एवं मृत्यु को प्राप्त होती है। मछली कांटे में लगे मांस का आस्वादन लेने के लोभ वश कांटे में फँस कर मृत्यु को प्राप्त होती है। भ्रमर कमल में स्थित मधु के गंध से आकृष्ट होकर उसे छोड़ना नहीं चाहती और अन्त में सायं काल आने पर कमल के फूल के पुनः संकुचित होने पर वह उसी में बन्दी हो प्राण त्याग देता है।

एक इन्द्रिय के वशीभूत होने पर तो जीव को अपना प्राण गवाँना पड़ता है, पाँच इन्द्रियों का दास मानव की दुर्गति का अन्त नहीं है।

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविषादपि।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम् ॥७७

रूप-रसादि विषय समूह राग द्वेषादि दोष उत्पन्न करने के कारण दोषों में कृष्ण सर्प के विष से भी भयंकर है। क्योंकि विष तो उसे खाने वाले को ही मारता है, परन्तु विषय तो आँख से देखनेवाले को (अथवा अन्य इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने पर ही) मृत्यु के द्वार पर ले जाती है।

विषयाशामहापाशाद्यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात्।
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षटशास्त्रवेद्यपि ॥७८

जो विषयों की आशा रूप कठिन बंधन से मुक्त हो सके हैं, वे ही मोक्ष लाभ के अधिकारी हैं। परन्तु छहों दर्शनों का ज्ञाता यदि विषय भोग में आकृष्ट रहता है तो (केवल शास्त्र ज्ञान द्वारा) उन्हें मुक्ति नहीं मिल सकती।

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, पातञ्जलि, पूर्वमिमांसा एवं उत्तरमीमांसा यह छः दर्शन शास्त्र है।

आपातवैराग्यवतो मुमुक्षून्
भवाब्धिपारं प्रतियातुमुद्यतान्।
आशाग्रहो मज्जयतेऽन्तराले
विगृह्य कण्ठे विनिवर्त्य वेगात् ॥७९

संसार समुद्र के पार जाने के लिए उद्यत हुए क्षणिक वैराग्य सम्पन्न मुक्तिकाम साधक को भोग आकांक्षा रूपी ग्राह गला पकड़कर वेग से, साधना के मार्ग से हटा कर बीच ही में डुबो कर मार देता है।

वैराग्य दृढ़ न होने पर साधक को किसी भी समय पतन का भय रहता है।

विषयाख्यग्राहो येन सुविरक्त्यसिना हतः।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूहवर्जितः ॥८०

जिस दृढ़वैराग्यवान पुरुष ने, तीव्र वैराग्य रूप तलवार के प्रहार से विषयरूपी ग्राह को मार दिया है वही विषय भोगेच्छा से उत्पन्न समस्त बाधा को पार कर मोक्ष लाभ करता है।

तीव्र वैराग्य प्राप्ति के उपाय :

विषमविषयमार्गैर्गच्छतोऽनच्छबुद्धेः
प्रतिपदमभियातो मृत्युरप्येष विद्धि।
हित सुजन गुरुक्त्या गच्छतः स्वस्य युक्त्या
प्रभवति फलसिद्धिः सत्यमित्येव विद्धि ॥८१

निर्बोध व्यक्ति दुःखदायक विषय समूह के भोग में लिप्त रहते हैं; मृत्यु उनका पग-पग पर पीछा करती है। परन्तु जो साधक हितकारी सद्गुरु से उपदेश ग्रहण कर अपनी युक्ति से अग्रसर होते हैं, उनको इसी जन्म में सफलता यानि जीवन मुक्ति प्राप्त हो जाती है। निःसंदेह यह सत्य है। (क्रमशः)

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

अब हम योगमाया-सम्बन्धी दर्शन की बात कहने जा रहे हैं। यह दक्षिणेश्वर की घटना है। इसका कुछ अंश हमने राखाल महाराज से सुना है और कुछ अंश हमें राय बहादुर बिहारीलाल सरकार से प्राप्त हुआ है।

"एक दिन काफी रात गये ठाकुर ने हमें ठेलकर उठा दिया और बोले—'तुम लोग यहाँ सोने के लिए आये हो क्या ?' सबको उठकर विविध उपदेश देने के बाद उन्होंने हम सभी को ध्यान करने के लिए विविध स्थानों में भेज दिया। लाटू को उस दिन उन्होंने बिल्ववृक्ष के नीचे भेजा था। बेलतला से लाटू के लौट आने पर ठाकुर ने हम लोगों से कहा—'आज तो लाटू का पुनर्जन्म हुआ है।'"

राखाल महाराज से हमने इतना ही सुना है। इसका मध्यवर्ती अंश बिहारी बाबू के मुख से सुनने को मिला था। (बंगाल के) मासिक वसुमती में उन्होंने जो कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, मुख से उन्होंने उसी का सविस्तार वर्णन किया था। उन्हीं के वर्णनानुसार हम साधक-लाटू की बेलतले की साधना के बारे में लिखते हैं।

"सिद्ध पंचमुण्डी आसन पर बैठकर ध्यान करना जिस-तिस का काम नहीं है। पक्का ब्रह्मचर्य और शुद्ध पवित्र देह-मन हुए बिना किसकी बिसात है कि वहाँ बैठकर जपध्यान करे ? ध्यानकाल में विभिन्न अशरीरी मूर्तियाँ भय दिखाती रहती हैं, बैठने नहीं देतीं, आसन से उठा देने का प्रयास करती हैं। साधक यदि निर्भीक नहीं हुआ तो सिद्ध आसन पर बैठकर जपध्यान नहीं कर सकता। इसीलिए ठाकुर बिल्ववृक्ष के तले साधना करने हर किसी को नहीं भेजते थे। अपने अंतरंगों में से ही चुन-चुनकर वहाँ भेजते थे। उस आसन पर बैठकर एक दिन लाटू के समान साहसी जवान साधक का भी कलेजा काँप उठा था। ध्यान हो जाने के बाद लाटू अपना आसन छोड़कर उठ नहीं पा रहा था—उसके चारों ओर नाना वीभत्स मूर्तियों ने विविध प्रकार की विभीषिकाएँ दिखा कर भय से उसे जड़ कर दिया था। ठीक उसी समय ठाकुर ने उसकी रक्षा की थी—दूर से ही जोर से हाँक लगाकर कहा था—'क्यों रे ! क्या बड़ा भय लग रहा है ? इतना भय किस बात का ? आ ! मेरे साथ चला आ।' ठाकुर के गले की आवाज सुनकर लाटू के प्राणों में साहस जगा। उस आसन पर बैठना क्या कम बात है ! वहीं बैठकर ठाकुर सिद्ध हुए थे। सिद्धि पीठ की शक्ति भला कहाँ जाएगी ?"

उन्हीं दिनों ठाकुर बीच बीच में कहा करते थे—"अरे ! योगमाया तुमलोगों की परीक्षा ले रही हैं। इस समय खूब सावधान रहना। उनकी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर माया की सब ग्रन्थियाँ एक एक कर कट जाएँगी। तब देखोगे—साकार निराकार सब एकाकार हो गया है।" कहते हैं कि ठाकुर ने योगमाया के बारे में अनेक बातें कही थीं। हमारा दुर्भाग्य है कि ठाकुर की बातें किसी ने लिपिबद्ध करके नहीं रखीं। लाटू महाराज से हमने अनेकों बार इस विषय में पूछा है, पर उन्होंने हर बार एक ही उत्तर दिया था—"वह सब सुनकर क्या होगा ? साधना करके समझो न। योगमाया की बात क्या कोई कह सकता है ? उनकी कितनी सब सिद्धियाँ हैं। उनकी सिद्धि देखने पर माँ बसुन्धरा तक भय से काँप उठती हैं - मनुष्य की तो बात ही क्या !"

साधक लाटू के ध्यान का एक अन्य चित्र भी हम अंकित करना चाहते हैं। यह घटना भी बिल्व-वृक्ष के नीचे ही हुई थी। उस दिन भी साधक-लाटू गम्भीर ध्यान में डूबकर बिल्कुल तन्मय हो गया था। उस समय वह ध्यानप्रसूत निद्रा से अभिभूत हो उठा था। योगनिद्रा की सहायता से अनेक ईश्वरी मूर्तियों का दर्शन मिलता है। वे मूर्तियाँ सर्वाभिष्टप्रदायिनी हैं। उनका प्राकट्य होने पर साधक का बाह्यज्ञान चला जाता है—साधक निश्चल, निस्पन्द और शान्त होकर ध्यान में विभोर हो जाता है। लाटू की भी उस दिन वही अवस्था हुई थी। मध्यरात्रि के समय जी वह आसन पर बैठा तो ब्राह्ममुहुर्त भी बीत चला तथापि लाटू की योगनिद्रा भंग नहीं हुई। ब्राह्ममुहुर्त में अपने सेवक को कमरे से अनुपस्थित पाकर ठाकुर स्वयं ही उसकी खोज में निकले। बेलतले पहुँचकर उन्होंने देखा कि निकट ही दो कुत्ते खड़े हैं। ठाकुर अग्रसर न होकर वहीं खड़े रहे। क्रमशः उषा के आलोक से दिगन्त आलोकित हो उठा। उस आलोक के स्पर्श से योगनिद्रामग्न लाटू भी धीरे धीरे जाग उठा। जागते ही उसने देखा कि सामने ठाकुर खड़े हैं। उन्हें समीप ही दण्डायमान देखकर दिव्यानन्द पुलकित लाटू अपने आसन से उठकर उनके चरणों में लोट गया। लौटते समय पथ में ठाकुर ने लाटू को बताया—"अरे! आज देखा कि दो भैरव कुत्तों के वेष में तेरे आस पास पहरा दे रहे हैं। तेरा महा सौभाग्य है कि माँ ने तेरी रक्षा करने के लिए अपने भैरवगण को भेज दिया है।" (यह प्रसंग मुझे राय बिहारी लाल सरकार बहादुर से सुनने को मिला था)।

दक्षिणेश्वर में लाटू रात भर ध्यान धारणा में विभोर रहा करता था। कभी कभी मौका मिला तो वह दिन में भी ध्यान करने को बैठता था। उन दिनों दक्षिणेश्वर में विराट् ध्यानयज्ञ चल रहा था। इसमें एक ओर तो नरेन, राखाल, बाबूराम, शशी, शरत्, योगीन, काली, तारक, लाटू आदि भावी संन्यासीगण थे और दूसरी ओर राम, मनोमोहन, गिरीश, बलराम, सुरेश, मास्टर आदि गृही भक्तगण थे। एक दल दिन में सत्संग का स्रोत प्रवाहित करता रहता था और दूसरा दल रात में सत्साधना के स्रोत में डूबा रहता था। इसी काल में एक दिन ठाकुर ने भक्तों से कहा था—"लाटू चढ़ा ही हुआ है (सर्वदा भाव में रहता है), क्रमशः लीन हो जाने की सम्भावना है।"

एक दिन दोपहर के समय ठाकुर ने लाटू को बुलाने के लिए विष्णु मन्दिर के पुरोहित (रामचन्द्र चट्टोपाध्याय) को भेजा। उन्होंने जाकर देखा कि लाटू तो निश्चल, शान्त, बाह्यज्ञानशून्य बैठा है। उसे अनेकों बार पुकारने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला, देह पर हाथ लगाकर हिलाने से भी उसकी चेतना नहीं लौटी। हारकर वे लौट आये और ठाकुर से सारी बातें कही। ठाकुर ने तब नरेन को वहाँ भेजा (उस दिन नरेन दक्षिणेश्वर में ही उपस्थित थे)। उन्होंने भी उसकी वह अवस्था देखी और ध्यान के गाम्भीर्य की परीक्षा करने के लिए एक लकड़ी लेकर निकट के ही वृक्ष की शाखा पर जोर जोर से प्रहार करने लगे। उसकी आवाज सुनकर ठाकुर स्थिर नहीं रह सके। वे स्वयं ही वहाँ आकर बोले—'रहने दे! उसे और तंग न कर।' नरेन ने इस पर कहा था—'होश रहने पर ही तो तंग करता। यह तो बिल्कुल बेहोश है!' तब ठाकुर हँसते हुए बोले—'इस प्रकार बेहोश हुए बिना क्या ध्यान जगता है रे!' पता नहीं क्यों उस दिन ठाकुर ने लाटू को बुलाने के के लिए नरेन को भेजा था! अन्य दिन तो वे लाटू को को ही भेजकर नरेन्द्रनाथ की खोज करवाते थे। अस्तु।

उन दिनों लाटू की बाह्य इन्द्रियों की संज्ञाशून्यता इतनी बढ़ गयी थी कि थोड़ी सी उद्दीपना से ही उनका शरीर जड़वत् स्थिर हो जाता था। बिहारी बाबू ने एक दिन की घटना का जैसा वर्णन किया है हम यहाँ वही (मासिक वसुमती से उद्धृत कर) प्रस्तुत करते हैं—

"पारस-मणि के स्पर्श से वे ध्यानसिद्ध हो गये थे। दक्षिणेश्वर में ठाकुर के पास निवास करते समय एक एक दिन तो वे ऐसे समाधिमग्न हो जाते थे कि ठाकुर को उनके सीने पर घुटना रखकर सहलाते हुए उनका

बाह्यज्ञान फिर लाना पड़ता था। यदु मल्लिक के बगीचे में (एक बार) वे केले के पत्ते काटने गये थे और वहाँ समाधिस्थ होकर खड़े रह गये। ठाकुर ने जब जाकर उनके पाँव पर पाँव रखकर दबाया तब वहीं उन्हें होश आया।" बिहारी बाबू ने जहाँ जहाँ समाधि लिखा है, हमें लगता है कि वह ध्यान की उच्चतर अवस्था है। क्योंकि परवर्ती काल में हमने लाटू महाराज के मुख से सुना है कि काशीपुर के उद्यान में ही उन्हें पहली बार समाधि लगी थी। यथास्थान हम उसका वर्णन करेंगे।

प्रेरक प्रसंग

योगक्षेमं वहाम्यहम्

स्वामी शिवसेवानन्द

रामकृष्ण मिशन आश्रम, चंडीगढ़।

इतिहास के आँचल में झाँककर देखें तो, बात बहुत पुरानी नहीं है। एक निष्ठावान कृष्णभक्त ब्राह्मण थे। प्रातः पूजा-पाठ समाप्त कर दिन भर बैठकर गीता पर टीका लिखा करते थे। टीका लिखने के कार्य में वे इतने अधिक व्यस्त रहते कि उन्हें घर-बार की चिंता ही न रहती।

एक बार ब्राह्मण टीका लिखते समय गीताध्ययन में गंभीर रूप से डूबे हुए थे। उस समय गीता के ९वें अध्याय का २२वाँ श्लोक उनके सामने था। इसको बार बार पढ़ते हुए ब्राह्मण बहुत उद्विग्न हो गये - "यह कैसे हो सकता है? प्रभु कहते है—"वे व्यक्ति जो दूसरे किसी की नहीं केवल मेरी उपासना करते हैं.... वहाम्यहम्— उनका भार मैं वहन करता हूँ।"

नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता! वे क्यों भार ग्रहण करेंगे? उन्हें क्या आवश्यकता है? तब व्यक्ति स्वयं क्या करेगा? प्रत्येक को अपना भार स्वयं वहन करना होगा। ब्राह्मण ने सोचा—इस शब्द में कहीं भूल है, यह सोचकर उन्होंने गीता में लिखे 'वहाम्यहम्' शब्द को काट दिया।

तभी ब्राह्मणी आ उपस्थित हुई "क्या जी, आपकी गीता की टीका कभी पूरी भी होगी या नहीं। घर में कुछ खाने को तो है नहीं, जाइए कुछ भिक्षा कर लाइए।"

"हाँ, हाँ, जाता हूँ—भिक्षा ले आता हूँ।" और ब्राह्मण प्रभु स्मरण कर भिक्षा के लिए निकल पड़े। जाते जाते अपने आप से ब्राह्मण कह रहे थे -"यह घर गृहस्थी मेरी है तो इसका भार मुझे ही वहन करना है—वहाम्यहम्—नहीं तो क्या भगवान मेरे घर का राशन वहन कर यहाँ पहुँचा देंगे?"

ब्राह्मण भिक्षा के लिए जा चुके थे। ब्राह्मणी घर पर अकेली थी अपने काम में व्यस्त। गर्मी जोरों की पड़ रही थी। तभी दरवाजे पर आवाज हुई। ब्राह्मणी ने समझा—ओह, निश्चय ही वे (ब्राह्मण) आये हैं। इतनी जल्दी लौट आये? पता नहीं आज भिक्षा मिली भी या नहीं। और यह सोचते सोचते ब्राह्मणी ने जाकर दरवाजा खोला—सामने एक १०-११ वर्ष का शिशु सिर पर एक भारी बोझा उठाये पसीने से तर बतर खड़ा था। आँखों में आँसू भरे।

क्या रे क्या चाहिए?—ब्राह्मणी ने प्रश्न किया। 'माँ, पंडितजी ने ये भोजन सामग्री एवं मिष्ठान्न भेजा है। माँ जल्दी उतरवा लो, बड़ी भारी टोकरी है। और नहीं उठा पा रहा हूँ। शिशु काँप रहा था। ब्राह्मणी शिशु को साथ साथ अंदर ले गयी तथा विभिन्न प्रकार की भोजन-सामग्री एवं मिष्ठान्न से भरी टोकरी को नीचे उतरवाया :—

ब्राह्मणी सोच में पड़ गयी—इतनी भारी टोकरी उन्होंने इतने से बच्चे के सिर पर उठवायी। बड़े निष्ठुर हैं। टोकरी नीचे उतारते जब वह शिशु नीचे झुका तो ब्राह्मणी ने देखा, उसकी कमर पर लाल लम्बा निशान था जो ऊपर उभर आया था।

अरे अरे बेटा, तुम्हारी कमर पर यह क्या हुआ ?

माँ टोकरी बड़ी भारी थी, उठा नहीं पा रहा था, पंडित जी ने छड़ी से मारा है।

हे भगवन ! एक तो बच्चे के सिर पर इतना भार उठवाया, फिर कमर पर छड़ी से मारा, आने दो आज उन्हें .....

'लो बेटा' पहले शीतल जल ग्रहण करो। अहा ! कितना सुन्दर शिशु है। एकदम बाल गोपाल, कहकर ब्राह्मणी ने शिशु को अत्यन्त प्यार किया। उसका मातृ हृदय प्रेम से भर आया था।

तभी शिशु बोला "माँ मैं जाता हूँ मुझे बहुत काम है। क्यों ठहरो न बेटा—वे आ जायँ, समय हो ही गया है, ठाकुर को भोग लगा दें, तुम भी प्रसाद ग्रहण करना, तब जाना।

माँ, मुझे अभी बहुतों का भार वहन कर पहुँचाना है, देरी होगी।

नहीं बेटा—थोड़ा पूजा घर में बैठ विश्राम कर लो अभी वे आ जाते हैं, और ब्राह्मणी ने पूजा घर में शिशु को बिठा दिया।

तभी खाली हाथ ब्राह्मण ने घर में प्रवेश किया।

"अरी भाग्यवान आज उपवास करो, आज कहीं भिक्षा नहीं मिली।"

क्या मजाक करते हैं जी, आज अधिक मिल गया, इसलिये इतना इठला रहे हैं। मैं नहीं जानती थी, आप इतने निष्ठुर भी हैं, अगर अपनी संतान होती, तो समझते- ब्राह्मणी ने थोड़ा क्रोध से कहा।

क्यों हुआ क्या ? ब्राह्मण बोले – 'इतनी बड़ी टोकरी बच्चे के सिर पर रखकर भिजवाई—फिर बेचारे को छड़ी से मारा। अहा कैसा बेचारे को दाग़ पड़ गया है, कमर पर। ब्राह्मणी ने आप से कहा।

ब्राह्मण को समझते देर न लगी। वह आश्चर्य से भर गये, उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। उस दिन भिक्षा भी नहीं मिली थी—केवल प्रभु को प्रणाम कर ही निकल गये थे। तब क्या गीता में भगवान के दिये शब्द "वहाम्यहम्" ·· क्या प्रभु स्वयं ही मेरे लिए वहन कर लाये।

कहाँ है वह बालक ? कहाँ है वह बालक ? ब्राह्मण पागलों की भांति चिल्ला उठे।

ब्राह्मणी कुछ समझ न सकी, केवल पूजा गृह की तरफ इंगित कर दिया। ब्राह्मण तीव्र गति से पूजागृह की ओर छूटे परन्तु ....

परन्तु भक्त को सही मार्ग निर्देश कर प्रभु जा चुके थे उन्हें दूसरों का भी भार जो वहन करना था।

ब्राह्मण की आँखों से अश्रुधारा निरंतर बही जा रही थी। परन्तु यह प्रेम के आँसू थे, प्रायश्चित के आँसू—ब्राह्मण कांपती वाणी से बोले—

ब्राह्मणी तुम धन्य हो, धन्य हो तुम। तुमने इन भौतिक आँखों से उस कृष्ण मुरारी के दर्शन कर लिये। तुम भाग्यवान हो। हाँ ब्राह्मणी, मैंने कमर पर छड़ी मारी थी। मैंने जो आज प्रातः ही प्रभु के शब्दों "वहाम्यहम्" को काट दिया था, वही मैंने उस बालक की कमर पर अपने ईष्ट की कमर पर आघात किया था, क्षमा करना प्रभो, क्षमा करना – मेरी आँखें खुल गयी हैं—

ठीक ही तो है, जो उस परम पिता, उस प्रभु को, कृष्ण मुरारी को ही एक मात्र कर्त्ता समझ कर उसकी उपासना करते हैं, तथा अपने आपको पूर्णरूपेण उसके चरणों में आत्म समर्पण कर देते हैं, उसके भार प्रभु स्वयं ही वहन करते हैं, और करेंगे क्यों नहीं उन्होंने स्वयं ही तो गीता में वचन दिया है –

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥" ✦

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (मध्यप्रदेश)

द्वारा संचालित

विवेकानन्द विद्यापीठ, नारायणपुर (बस्तर)

(आदिवासी बालकों का आवासीय विद्यालय)

के बालकों द्वारा किया गया चमत्कार

(1988 – 89)

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर की यह नारायणपुर शाखा 2 अगस्त 1985 को स्थापित हुई और उसकी शैक्षणिक इकाई "विवेकानन्द विद्यापीठ" के नाम से 2 जुलाई 1986 को शुरू की गयी। 'विद्यापीठ" आदिवासी बालकों का एक आवासीय विद्यालय है, जिसमें प्रारम्भ में प्राथमिक की पहली से चौथी तक की चार कक्षाएं प्रारम्भ की गयीं। पिछले वर्ष अर्थात् 1987-88 में 7 बालकों की पहली टोली ने शिक्षा जिला कांकेर द्वारा आयोजित प्राथमिक प्रमाण-पत्र परीक्षा में भाग लिया और वह हमारे लिये अत्यन्त गर्व का विषय था कि सातों बालकों ने प्रावीण्य-सूची में निम्नलिखित स्थान प्राप्त किये—पहला, दूसरा, तीसरा (दो बालक), चौथा (दो बालक) तथा सातवाँ। हमारे विद्यार्थी मोहनलाल ने 96% गुणांक पाकर न केवल शिक्षा जिला कांकेर में पहला स्थान प्राप्त किया, बल्कि उसने समूचे बस्तर सम्भाग, जिसके अन्तर्गत कांकेर और जगदलपुर ऐसे दो शिक्षा जिला है, में भी प्रथम स्थान पर अधिकार जमाया। इस सात बालकों में से 6 इसी क्षेत्र के आदिवासी थे। सम्भवतः यह पहला मौका था, जब किसी आदिवासी छात्र ने समूचे बस्तर सम्भाग में प्राथमिक प्रमाण-पत्र परीक्षा में पहला स्थान प्राप्त किया हो।

इस वर्ष भी, अर्थात् 1988-89 में, हमारे 11 बालकों, जो सभी आदिवासी हैं, की दूसरी टोली ने प्राथमिक प्रमाण-पत्र परीक्षा में वैसा ही कमाल किया है। 9 बालकों ने प्रावीण्य-सूची में निम्नलिखित प्रकार से अधिकार जमाया है। फिर शिक्षा जिला कांकेर की प्रावीण्य-सूची में प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त करनेवाले हमारे छात्र बुधराम और रामधर ने समूचे बस्तर सम्भाग में भी पहला और दूसरा स्थान प्राप्त किया है। अधिक गौरव की बात यह है कि प्रथम स्थान प्राप्त करनेवाला छात्र, बुधराम, अबुझमाड़ का रहनेवाला है और उसने एक अबुझमाड़िया के रूप में पुराने सारे कीर्तिमान तोड़कर नया कीर्तिमान स्थापित किया है। हमारे इन बालकों द्वारा प्राप्त गुणांक निम्नलिखित हैं :—

क्र०	नाम	जनजाति	प्राप्तांक %	शिक्षा जिला कांकेर की प्रावीण्य-सूची में प्राप्त स्थान
1.	बुधराम	माड़िया	95	पहला
2.	रामधर (आत्मज कारूराम)	गोंड़	93.5	दूसरा
3.	गोकुल प्रसाद	हल्बा	90	पाँचवाँ
4.	राजेन्द्र कुमार	गांड़ा	89.5	छठा
5.	समतन सिंह	गोंड़	88	सातवाँ
6.	रामेश्वर	हल्बा	86.5	आठवाँ
7.	महेन्द्र कुमार	हल्बा	86 5	आठवाँ
8.	घनश्याम	हल्बा	82.5	सत्रहवाँ
9.	रामधर (आत्मज महार सिंह)	गोंड़	80	उन्नीसवाँ
10.	विश्वनाथ	हल्बा	79	—
11.	नरेश कुमार	गोंड़	73.5	—

रायपुर,
दिनांक 16 मई 1989

स्वामी आत्मानन्द
सचिव